

# शुक्र और उसके पारगमन

# शुक्र और उसके पारगमन

लेखक :

एस.पी. पंड्या  
जे.एन. देसाई  
एस.आर. शाह

अनुवादक :

प्रदीप कुमार मुखर्जी



विज्ञान प्रसार

**प्रकाशक**

**विज्ञान प्रसार**

**सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया**

**नई दिल्ली 110 016**

(पंजीकृत कार्यालय : टेक्नोलॉजी भवन, नई दिल्ली 110 016)

**दूरभाष : 26864157, 26864022 फैक्स : 26965986**

**ई-मेल : vigyan@hub.nic.in**

**इंटरनेट : <http://www.vigyanprasar.com>**

**कापीराइट : © 2004 विज्ञान प्रसार**

**सचाईकार सुरक्षित**

**शुक्र और उसके पारगमन**

**लेखक : एस.पी. पंड्या, जे.एन. देसाई, एस.आर. शाह**

**अनुवादक : प्रदीप कुमार मुखर्जी**

**समन्वयन : सुबोध महंती, हरिकृष्ण देवसरे**

**मुख पृष्ठ संकल्पना : विनय बी. काम्बले**

**चित्रों की संकल्पना : लेखक**

**शब्द संयोजन एवं पृष्ठ योजना : सुभाष भट्ट**

**ISBN : 81-7480-108-1**

**मूल्य : 45.00 रुपए**

**मुद्रक : रैक्सो प्रेस, प्रा. लि., नई दिल्ली**

## विषय-सूची

आभार .....	vi
प्राक्कथन .....	vii
प्रस्तावना .....	ix
भूमिका.....	1
अध्याय एक : शुक्र : पृथ्वी से तुलना तथा इसकी कलाएं .....	7
अध्याय दो : शुक्र पर एक “दिन” और एक “रात” .....	16
अध्याय तीन : शुक्र का परिमंडल .....	23
अध्याय चार : शुक्र की सतह और उसकी आंतरिक संरचना .....	32
अध्याय पांच : पारगमन .....	37
वैज्ञानिक शब्दावली .....	63
अधिक जानकारी के लिए संस्तुत पुस्तकें .....	68

## आभार

इस पुस्तक को तैयार करने में “विज्ञान प्रसार” द्वारा दिए जाने वाले सहयोग तथा उत्साहवर्द्धन के लिए हम अपना आभार व्यक्त करते हैं।

08 जून, 2004 को घटित होने वाले शुक्र पारगमन की परिस्थितियों संबंधी नासा के फ्रेड एस्पिनाक द्वारा जुटाए गए कुछ विवरण विज्ञान प्रसार द्वारा हमें उपलब्ध कराए गए। इस सामग्री को पुस्तक में उपयोग हेतु उपलब्ध कराने के लिए हम विज्ञान प्रसार के आभारी हैं।

अंतर्युति के पास शुक्र की धन्वाकार (क्रीसेंट) कला को दर्शाने वाला चित्र मूल रूप से कैमिला फ्लेमेरिओन द्वारा लिखित पुस्तक “द फ्लेमेरिओन बुक ऑन एस्ट्रोनॉमी” से लिया गया है। इस पुस्तक के संशोधित संस्करण का (एन्नाबेल तथा बर्नार्ड पेज द्वारा किया गया) अंग्रेजी अनुवाद 1964 में साइमन एण्ड शुस्टर, न्यूयार्क द्वारा प्रकाशित किया गया। रेडियो साउंडिंग तथा अंतरिक्ष युग से पहले “खगोलीय इकाई” के निर्धारण से जुड़ा विस्तृत लेखाजोखा इसी पुस्तक के दूसरे अध्याय में दिया गया है।

## प्राक्कथन

विज्ञान प्रसार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विविध विषयों पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है। लोकप्रिय विज्ञान की कालजयी पुस्तकें, भारतीय विज्ञान सम्पदा, प्राकृतिक इतिहास, स्वास्थ्य, स्वयं करो आदि शृंखलाएं हैं जिन्हें अब तक प्रकाशित किया गया है। हमारा इस बात पर अधिक जोर रहा है कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विविध पहलुओं पर हम उत्तम प्रकाशन, सामान्य मूल्य में उपलब्ध कराएं। इसके अलावा विज्ञान प्रसार प्रमुख भारतीय भाषाओं में भी विभिन्न लक्षित-समूहों के लिए पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

विज्ञान प्रसार ने 08 जून 2004 को एक दुर्लभ खगोलीय घटना शुक्र पारगमन से जोड़कर विशेष रूप से खगोलविज्ञान और सामान्य रूप से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने के लिए देशव्यापी गतिविधियों का कार्यक्रम शुरू किया है। एस.पी. पंडया, जे.एन. देसाई और एस.आर. शाह द्वारा लिखित पुस्तक शुक्र और उसके पारगमन इसी प्रयास का एक हिस्सा है। यह पुस्तक शुक्र और उसके पारगमन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन करती है। जिसमें एस्ट्रोनॉमिकल यूनिट की खोज भी शामिल है। लोकप्रिय शैली में लिखी यह पुस्तक पाठकों को इस दुर्लभ खगोलीय घटना को समझाने में सहायक होगी और सावधानीपूर्वक इस घटना को देखने के लिए प्रेरित करेगी।

नई दिल्ली  
30 अप्रैल, 2004

विनय बी. काम्बले  
कार्यवाहक निदेशक  
विज्ञान प्रसार

## प्रस्तावना

दूरबीन के आविष्कार के बाद होने वाला शुक्र का छठा पारगमन तथा मानवजाति द्वारा अवलोकित किया जाने वाला पांचवां पारगमन 08 जून, 2004 को घटित होने वाला है। ऐतिहासिक दृष्टि से सौर जगत के विस्तार संबंधी हमारी जानकारी को बढ़ाने में शुक्र के पारगमनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अलबत्ता अब यह घटना अपनी घटित होने की विरलता के कारण ही मुख्यतया हमारा ध्यान आकर्षित करती है। किसी मनुष्य के औसत क्रियाशील जीवन को 70 वर्ष तथा पीढ़ियों के बीच के औसत अंतराल को 25 वर्ष मान लेने पर इस घटना (असल में घटना युग्म) को अवलोकित करने का अवसर दो या तीन पीढ़ियों के अंतराल के बाद ही प्राप्त हो जाता है। अतः हम सचमुच भाग्यशाली हैं।

विज्ञान संबंधी जानकारी का प्रसार करने वालों के लिए ऐसी घटनाएं आम जनता के ध्यान को आकर्षित करने तथा खगोलीय मामलों में उनको जानकारी देने का अवसर प्रदान करती हैं। विशेष रूप से सौर जगत तथा सामान्य रूप से ब्रह्मांड संबंधी हमारी जानकारी ने पिछले चालीस वर्षों में अंतरिक्ष यान आधारित अध्ययनों के जरिए आगे की दिशा में एक लंबी छलांग लगाई है। ऐसे अध्ययनों द्वारा अपने पड़ोसी ग्रह के बारे में उद्घाटित कुछ तथ्यों के बारे में अपने पाठकों के लाभार्थ प्रकाश डालने के लिए हमने इस अवसर का लाभ उठाया है। सामयिक रूचि के कारण भी पारगमनों और उनके इतिहास को कुछ प्रमुखता से वर्णित किया गया है।

इस पुस्तक को लिखने तथा उसे प्रकाशित कराने के लिए उत्साहित करने के लिए हम विज्ञान प्रसार, विशेष रूप से डा. विनय बी. काम्बले

तथा डॉ. सुबोध महंती के आभारी हैं। हमें विश्वास है कि शुक्र और शुक्र पारगमन संबंधी इस पुस्तक के अलावा और भी ढेर सारी सामग्री को विषय में रुचि रखने वाले पाठकों को विज्ञान प्रसार उपलब्ध कराएगा।

30 अप्रैल, 2004

एस.पी. पंड्या  
जे.एन. देसाई  
एस. आर. शाह

## भूमिका

कभी भौर के समय पूर्वी आकाश तो कभी सांझ ढलने के समय पश्चिमी आकाश में हीरे की तरह दमकता शुक्र बरबस ही हमारी निगाहों को आकर्षित करता है। ग्रीक पुराण में 'प्रेम की देवी' तथा 'हिंदू पुराण' में 'असुर गुरु' (असुरों के शिक्षक) शुक्राचार्य का यह द्योतक है। केवल प्रातःकालीन या केवल संध्याकालीन आकाश में ही दृष्टिगोचर होने के कारण प्राचीन ग्रीक निवासी इसे दो भिन्न पिंडों के रूप में सोचने के लिए बाध्य हुए थे तथा उन्हें 'भौर का तारा' तथा 'सांझ का तारा' की संज्ञा उन्होंने दी थी (हालांकि बेबीलोनवासी यह जानते थे कि यह एक ही पिंड है तथा इसे "निन-दर-अन्ना" की संज्ञा उन्होंने दी थी)। कभी-कभार दिखाई पड़ने वाले दीप्त अधिनवतारों (सुपरनोवा) को छोड़कर रात्रि आकाश में इसकी द्युति को केवल चंद्रमा ही मात दे पाता है।

बेबीलोनी सभ्यता के पांच "घुमतुओं" (ग्रहों) में से सर्वाधिक ध्यान आकर्षित करने वाले शुक्र का उल्लेख निनेवाह से 6 8 4 ईसा पूर्व जितने पुरातन काल में प्राप्त भिट्टी के फलकों में भी मिलता है। तारों की पृथ्वीमि में रोजाना अपनी स्थिति बदलने वाले सात खगोलीय पिंडों में द्रुतता के साथ अपनी स्थिति बदलने के कारण शुक्र का (चन्द्रमा और बुध के बाद) तीसरा स्थान है। अतः ब्रह्मांड के अरस्तू - तालेमी मॉडल में पृथ्वी (जिसे सबके केन्द्र में स्थित माना गया था) से दूरी के हिसाब से इसे तीसरा स्थान प्रदान किया गया था। उल्लेखनीय है कि प्राचीन बेबीलोनी खगोलिकी ही इस "व्यवस्था" के मूल में थी तथा सप्ताह के दिनों के नामकरण के साथ भी इसका रोचक संबंध था। इच्छुक पाठक संदर्भों को खंगाल सकते हैं।\*

"अरस्तू - तालेमी मॉडल" में चंद्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति और शनि (दूरी के इसी क्रम में) स्थिर पृथ्वी के चारों ओर की कक्षाओं में परिक्रमण करते हुए माने जाते थे। इसके बाद स्थिर तारों का गोला आता था।

\* 'रिपोर्ट ऑफ द कैलेंडर रिफर्म कमिटी' (भारत सरकार), सी.एस.आई.आर. प्रकाशन (1950)

\* "टाइम एंड कैलेंडर्स" डब्ल्यू.एम. ओनील, सिडनी यूनिवर्सिटी प्रेस (1975)

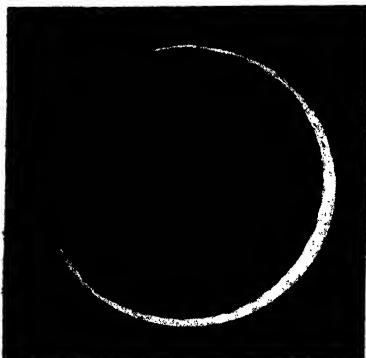
तालेसी (सन् १००-१७० ई.) ने इन सात पिंडों की गति का वर्णन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “मैग्नम ओपस” (जो “अल्माजेस्ट” नाम के अनुवाद द्वारा ही अधिक चर्चित है) में किया था। यह मॉडल १५४३ में “कोपर्निकीय क्रांति” होने तक मान्य रहा (तथा इसे उस समय ईसाई धर्म का समर्थन भी प्राप्त था)। सन् १५४३ में निकोलस कोपर्निकस (सन् १४७३-१५४३ ई.) की प्रसिद्ध पुस्तक “द रेवोल्यूशनिबस ऑर्बियम सैलेस्टियम” प्रकाशित हुई जिसमें पृथ्वी को ब्रह्मांड के केन्द्र से हटाकर उन्होंने वहां सूर्य को स्थापित कर दिया था। कोपर्निकस इस पुस्तक का प्रकाशन तब तक टालते रहे जब तक कि वह स्वयं अपनी मृत्यु शैश्या पर न जा पहुंचे क्योंकि चर्च की तरफ से उन्हें प्रतिकूल प्रतिक्रिया की आशंका थी (वह स्वयं पौलेंड के फ्रॉन्नबर्ग स्थित मुख्य गिरजाघर के पादरी थे)। उनकी पुस्तक की प्रस्तावना एंड्रियास ओसिएंडर, जो एक प्रोटेस्टेंट मतावलंबी व सुधारक थे, ने लिखी थी जिसमें उन्होंने इस बात का उल्लेख किया था कि ‘‘इस पुस्तक में वर्णित विषयवस्तु काल्पनिक है तथा इसे महज एक बौद्धिक एवं गणितीय अभ्यास ही माना जाना चाहिए तथा किसी वास्तविकता को निरूपित करने का इसका कोई उद्देश्य नहीं है।’’ ईसाई धर्म का कुछ ऐसा ही खौफ उन दिनों व्याप्त था।

इस पुस्तक के प्रकाशन को यूरोप की वैचारिक क्रांति के लिए बहुत महत्वपूर्ण दर्जा दिया जाता है तथा परवर्ती काल में धर्म सिद्धांत के विरुद्ध तर्कसंगत विचारधारा को इससे काफी मान्यता प्राप्त हुई हालांकि चर्च की तरफ से जबर्दस्त विरोध का सामना इसे करना पड़ा था। यह यूरोप के आधुनिक विज्ञान के उत्थान का कारण बना। (इस संदर्भ में हमारे समाज की वर्तमान स्थिति पर एक नजर डालना समीचीन होगा)।

एक बार यह मान लिए जाने पर कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमते ग्रहों में से महज एक ग्रह है, स्वाभाविक रूप से उठने वाला अगला प्रश्न था “क्या अन्य ग्रहों में जीवन है?” इसके सबसे अधिक संभावित पात्र पृथ्वी के दोनों ओर स्थित ग्रह, सूर्य की तरफ स्थित शुक्र तथा पृथ्वी से परे स्थित मंगल ही हो सकते थे। अतः मंगल के साथ-साथ शुक्र को भी जीवन से संभावनायुक्त माना गया। उल्लेखनीय है कि १८७७ में शियापरेल्ली ने मंगल ग्रह पर कुछ चिन्हों को “प्रेक्षित” किया था जिन्हें उसने “कैनेली” की संज्ञा दी थी, अंग्रेजी में अनूदित होकर यह “कैनाल्स” बन गया जिससे इस कल्पना को हवा मिली कि मंगल में बुद्धिसंपन्न प्राणियों का वास है। यह अवधारणा पिछली सदी के मध्य

तक व्याप्त रही। शुक्र के अध्ययन में विशेष आकर्षण भरने वाले कुछ और भी बिंदु हैं :

1. अंदर की तरफ स्थित होने यानी अंतर्ग्रह होने के कारण यह चंद्रमा से मिलती-जुलती “कलाओं” का प्रदर्शन करता है। इसके प्रसर कोण या इलांगेशन (सूर्य से आभासी कोणीय दूरी), जहां यह एकदम “अर्द्धचंद्र” सदृश कला (जिसे अर्द्धक कला या डाइकोटॉमी कहते हैं) का प्रदर्शन करता है, द्वारा सौर जगत में ग्रहों के मध्य की सापेक्ष दूरियों को पहले-पहल ज्ञात कर पाना संभव हो पाया था।
2. “पारगमन” घटित होने की संभावना यानी सूर्य की चकती के आगे से ग्रह के गुजरने की घटना जब ग्रह सूर्य पर एक “काले बिंदु” की तरह दृष्टिगोचर होता है।
3. सन् 1761 में घटित होने वाले शुक्र पारगमन (दर्ज किया गया दूसरा पारगमन) के अवलोकन के दौरान लोमोनोसॉव ने यह प्रेक्षित किया कि जब शुक्र की चकती सूर्य में “निमीलित” हो जाती है तो यह किसी “प्रभामंडल” से धिरा दिखाई देता है। उसने इसकी व्याख्या यह कहकर दी कि यह शुक्र से होकर गुजरने वाली सौर किरणों के प्रबल अपवर्तन के कारण ही था और इससे यह अनुमानित किया कि ग्रह के चारों तरफ एक सघन वायुमंडल मौजूद है। उसने “मसिबिंदु” (इंक ड्राप) प्रभाव (जो “अश्रुबिंदु” या टियर ड्राप भी कहलाता है तथा जिसके बारे में “पारगमन” शीर्षक अध्याय में समझाया गया है) की खोज भी की। परिमंडलीय अपवर्तन के कारण जब शुक्र “धन्वाकार” (क्रीसेंट) होता है तो इसके शृंग (हार्न) काफी आगे की ओर निकले होते हैं मानो एक दूसरे से मिलना चाह रहे हों (चित्र-2) और अंतर्युक्ति के करीब, ग्रह जब सौर पाद (सोलर लिंब) या सूर्य के किनारे के नजदीक होता है तब अंधकारमय किनारा एक चमकदार कंकणाकार वलय से धिरा दिखाई देता है।
4. श्रोटर (1792) ने यह प्रेक्षित किया कि सटीक अर्द्धक कला (अर्द्धचंद्र) अंतर्युक्ति के बाद, यानी परिकलनों द्वारा अपेक्षित समय के थोड़ी देर बाद, तथा अंतर्युक्ति से थोड़ी देर पहले घटित होती है। इसे श्रोटर प्रभाव का नाम दिया जाता है तथा यह संभवतया शुक्र के परिमंडल में होने वाले अपवर्तन के चलते ही होता है।



चित्र - 1 : अपनी धन्वाकार (ब्रीसेंट) कला में शुक्र। शृंगों के विस्तार पर गौर करें जो चंद्रमा की धन्वाकार कला से बहुत अधिक भिन्नता रखता है।

हालांकि बुध व शुक्र दोनों ही अंतर्ग्रह होने के कारण पारगमन की घटनाओं का प्रदर्शन करते हैं, बुध के पारगमन अपेक्षाकृत अधिक, एक सदी में करीब चौदह बार घटित होते हैं (पिछला पारगमन 7 मई, 2003 को घटित हुआ था जिसे भारत से ही देखा जा सका था)। इसके विपरीत शुक्र के पारगमन बिरले ही घटित होते हैं। एकांतर क्रम से  $105\frac{1}{2}$  तथा  $121\frac{1}{2}$  वर्षों के अंतराल से ये युगमों में घटित होते हैं जिनके बीच आठ वर्षों का समय अंतराल होता है। दिसंबर 1874 तथा दिसम्बर 1882 के युगम के बाद अगला युगम जून 2004 तथा जून 2012 को घटित होगा। इनमें से पहला पारगमन 8 जून 2004 को घटित होगा तथा उसे भारत से भी अच्छी तरह से देखा जा सकेगा। शुक्र के पारगमन युगमों के मध्य एक सदी से अधिक का अंतराल होने के कारण एक पीढ़ी के बाद तीसरी पीढ़ी को ही जाकर इसे देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। हालांकि प्रथ्यात वैज्ञानिक एडमंड हेली ने ऐसे ही एक पारगमन के दौरान किए जाने वाले (सूर्य और पृथ्वी के बीच की परिशुद्ध औसत दूरी यानी खगोलीय इकाई को ज्ञात करने के लिए) एक असाधारण प्रयोग को प्रस्तावित किया था, वह स्वयं किसी पारगमन की घटना का अवलोकन नहीं कर पाए थे।

शुक्र इतना चमकदार क्यों दिखाई देता है? यह इसकी "शिवति" (एल्बिडो विसरित परावर्तकता) के उच्च मान की वजह से होता है। ग्रहों की शैलीय सतह करीब 16 प्रतिशत प्रकाश को ही परावर्तित कर पाती हैं जबकि शुक्र के लिए (परावर्तकता का) यह मान 72 प्रतिशत है, (जिसे) इसके परिमंडल में मौजूद सघन बादलों की एक मोटी परत के कारण माना जा सकता है। इस बादल की परत के कारण ही इसकी सतह को (वर्णक्रम के) दृश्य परिसर में न

तो पृथ्वी पर स्थित दूरबीनों और न ही ग्रह की परिक्रमा करते अंतरिक्ष यानों में मौजूद कैमरों द्वारा देखा जा सकता है। सेंटीमीटर परिसर वाले तरंगदैर्घ्य पर रेडार मानवित्रण द्वारा शुक्र की सतह का अध्ययन किया गया है। लेकिन 1958 में रेडियो तरंगों द्वारा मापी गई दूति ने इसकी सतह के ऊंचे तापमान पर होने के संकेत दिए थे; तथा बाद में प्रत्यक्ष रूप से किए गये मापनों द्वारा इसका पृष्ठीय तापमान 470 डिग्री सेल्सियस पाया गया था। शुक्र का परिमंडल अत्यंत शुष्क भी है। फिर ये बादल की बूँदें भला किस चीज से रखित हैं? प्रकाश-प्रकीर्णन अध्ययनों द्वारा पता चला है कि ये बूँदें सांद्रित सलफ्यूरिक एसिड की हैं। सचमुच ऐसे में जीवन की तलाश शुक्र में करना बेकार है। इसके घने परिमंडल, जिसकी रचना अधिकांश रूप से कार्बन डाइ-आक्साइड से ही हुई है, का दबाव पृथ्वी की तुलना में 90 गुना अधिक होता है।

सूर्य से शुक्र की दूरी पृथ्वी की तुलना में 0.7 गुना होने के कारण इस पर दो गुना सौर विकिरण आकर गिरता है। लेकिन केवल इसी कारणवश इसका तापमान इतना अधिक नहीं होना चाहिए। दरअसल, शुक्र का उच्च पृष्ठीय तापमान “संघातक ग्रीन हाउस प्रभाव” के कारण होता है। जब कोई ग्रहीय परिमंडल (सौर विकिरण सदृश) दृश्य विकिरण के अपने में से होकर गुजरने देता है लेकिन विकिरण से उत्तप्त हो उठे सतह से उत्सर्जित होने वाले अवरक्त विकिरण को वापस अंतरिक्ष में नहीं जाने देता तो उस हालत में सामान्य रूप से अपेक्षित तापमान से वह सतह अधिक उष्ण हो उठता है। पृथ्वी का वायुमंडल भी “ग्रीन हाउस” प्रभाव का प्रदर्शन करता है जिसकी अनुपस्थिति में पृथ्वी का तापमान आज की तुलना में 20 डिग्री सेल्सियस कम होता। लेकिन शुक्र के परिमंडल में अत्यधिक प्रबल होने के कारण यह घटना उसके सतह के तापमान को असाधारण रूप से बढ़ा देती है। “शुक्र का परिमंडल” शीर्षक चौथे अध्याय में हम (तापमान के) इस अंतर के कारणों की चर्चा करेंगे। हमारे लिए एक सबक अपने पर्यावरण का प्रदूषण नियंत्रित न करने के कारण होने वाले दुष्परिणामों की चेतावनी के रूप में इसमें निहित है।

शुक्र के संबंध में एक विशिष्ट तथ्य यह है कि अपनी धुरी पर इसकी घूर्णन गति अत्यंत धीमी, एक घूर्णन के लिए 243 दिनों के नाक्षत्र (साइडरल) दर से और वह भी सूर्य के चारों ओर घूमने की विपरीत दिशा (यानी पश्चगतिक) होती है। सूर्य के चारों घूमने की 223 दिनों की अवधि को इसमें शामिल कर लेने पर यह धीमी पश्चगतिक घूर्णन शुक्र पर प्रभावी रूप से 117 दिन का

“दिन-रात” चक्र हमें प्रदान करती है जिसमें सूर्य पश्चिम में उदय होकर पूर्व में ढलता है। इसका विवरण शुक्र की कलाओं के विस्तृत विवरण के साथ दूसरे तथा तीसरे अध्यायों में दिया गया है। शुक्र के आंतरिक भाग के बारे में बहुत ही कम जानकारी हमारे पास है। अधिकतर जानकारी पृथ्वी से तुलना द्वारा ही अनुमानित की गई है तथा रेडार मानचित्रण द्वारा लिए गए प्रेक्षणों से इसके पृष्ठीय लक्षणों संबंधी जानकारी हासिल की गई है। इनके बारे में पांचवें अध्याय में विशद रूप से चर्चा की गई है।

अंत में “आश्चन लाइट्स” के बारे में एक संक्षिप्त चर्चा जरूरी है। यह एक रहस्यमय घटना है तथा यह स्पष्ट नहीं है कि यह घटना वास्तविक है या महज एक दृष्टि भ्रम। धन्वाकार और “अद्वचंद्र” कलाओं के बीच शुक्र की अंधकारमय चकती प्रकाश दूरबीनों द्वारा अवलोकित किए जाने पर एक अति क्षीण किरमिजी (क्रिम्सन) प्रकाश का उत्सर्जन करती हुई प्रतीत होती है जिसे “आश्चन प्रकाश” का नाम दिया गया है। अंतर्युक्ति से 10 अंश के प्रसर कोण यानी सबेरे सूर्य से हटकर शुक्र के दूर जाने तथा शाम को उसके पास चले आने के दौरान ही इस घटना को अधिकांश रूप से अवलोकित किया गया है। एक छोटे दूरबीन, जिसे एक बढ़िया से अंधेरे स्थान पर स्थापित किया गया हो, की मदद से इस घटना को अवलोकित कर उसकी जांच करना पाठकों के लिए एक सार्थक प्रयास होगा।

\* \* \*

## अध्याय एक

# शुक्र : पृथ्वी से तुलना तथा इसकी कलाएं

पिछली सदी के मध्य तक सौर जगत के ग्रहों की उत्पत्ति एक बड़ी विवादित समस्या थी। क्या यह सूर्य के साथ उसके पास से गुजरते किसी तारे के सांयोगिक भिडंत के कारण थी जिसने सूर्य से सिगार की शक्ल के एक बादल को खिंच कर उससे अलग कर दिया था जो अंततः ग्रहों के रूप में संघनित हुआ? पिछली सदी के मध्य में चैंबरलेन और माउलटेन द्वारा सुझाई गई इस धारणा की सर जेम्स जींस द्वारा विशद व्याख्या दी गई। एक अन्य धारणा, जिसे अठारहवीं सदी के दार्शनिक इमेनुएल कांट द्वारा सामने रखा गया था, को गणित लापलास ने वैज्ञानिक रूप से विकसित किया। इस धारणा के अनुसार सूर्य और ग्रहीय प्रणाली का उद्भव एक साथ ही एक आद्यसौर (प्रोटोसोलर) बदल के संघनन के चलते हुए था। बादल के केंद्रक (क्रोड) से सूर्य की उत्पत्ति हुई जबकि (केंद्रक के) चारों ओर की चकती के पदार्थ के संघनित होने से ग्रहों का जन्म हुआ। इस संबंध में महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि अगर पहला परिदृश्य (सांयोगिक भिडंत) ही सही है तो किसी तारे के चारों तरफ बनने वाली ग्रहीय प्रणाली बिरले ही घटित होने वाली घटना होनी चाहिए। इसके विपरीत, दूसरी धारणा के अनुसार ऐसी घटना तारे की निर्माण प्रक्रिया का ही एक हिस्सा है। सौर जगत के ग्रहों के अलावा कई अन्य ग्रह भी अब खोजे जा चुके हैं तथा हब्बल अंतरिक्ष दूरबीन ने भी (वर्णक्रम के) अवरक्त परिसर में कुछ नए जन्म लेते तारों के चारों तरफ अवशिष्ट गैसों से निर्मित चकतियों को प्रेक्षित किया है, जो मूलतः कांट-लापलास परिकल्पना की ही पुष्टि करती है।

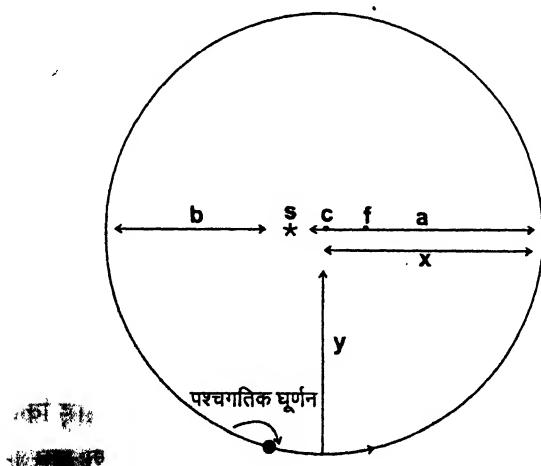
आद्यतारक (प्रोटोस्टैलर) चकती में चलने वाली अभिवृद्धि (एक्रिशन) प्रक्रिया पदार्थ के सुविशाल पिंडों का सृजन करती है, जो पास खिंचते हुए कुछेक सौ किलोमीटर आकार के 'ग्रहाणु' (प्लेनेटसिमल) कहलाने वाले

पिंडों का निर्माण करते हैं। ये ग्रहाणु परस्पर संघट्टों द्वारा आकार में बदलते हुए ग्रहों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं। किसी भी ग्रह का संघटन उस स्थान से सूर्य की दूरी पर आश्रित होता है जहां उसका निर्माण होता है। अब वाष्पशील पदार्थ तो अति दूरस्थ स्थानों पर ही संघनित हो सकते हैं जहां का तापमान काफी कम होता है। अतः सौर जगत के ग्रह स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं – मंगल ग्रह तक तो छोटे ‘शैल’ पिंड हैं जिनकी अधिकतर संहति ठोस सिलिकेट सदृश पदार्थ तथा धात्विक यौगिकों के कारण होती है जबकि (मंगल के) परवर्ती क्षेत्र में बृहस्पति और शनि सदृश भीमकाय गैसीय ग्रह तथा यूरेनस और नैज्यून सदृश विशाल ग्रह हैं जो अधिकांश रूप से जमे हुए वाष्पशील पदार्थों द्वारा ही निर्मित हैं (प्लूटो, जो अपेक्षाकृत एक लघु बर्फीला पिंड है, अपने आप में ही एक वर्ग है। खगोलविद् धूमकेतु की तरह ही इसे परा-नैज्यूनीय पिंड मानते हैं)। सूर्य से पृथ्वी और शुक्र दोनों एक ही सी दूरी के परास में स्थित होने के कारण उनके संघटनों की समानता अपेक्षित ही है। उनकी परस्पर तुलना से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। ऊपर से इन दोनों ग्रहों के आकार भी आपस में बहुत मेल खाते हैं। पृथ्वी का औसत व्यास 12,756 किलोमीटर जबकि शुक्र का 12,100 किलोमीटर है। शुक्र की संहति पृथ्वी की संहति की तुलना में 1.9 प्रतिशत मात्र ही कम है तथा उसका औसत घनत्व पृथ्वी के औसत घनत्व 5.52 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर की तुलना में 5.25 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है। पृथ्वी का बाहरी भूपटलीय पदार्थ सिलिकेट निर्मित होने के कारण कम घनत्व वाला है, जिसका मान 3.09 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है। वेनेरा लैंडर अंतरिक्षयान ने भी शुक्र के पृष्ठीय पदार्थ के सिलिकेट निर्मित होने की ही जानकारी दी है। फिर क्या कारण है कि दोनों ही ग्रहों के औसत घनत्व उनके पृष्ठीय पदार्थ घनत्वों की तुलना में इतने अधिक हैं? इसकी वजह है दोनों का “विभेदित” (डिफरेंशिएटेड) होना। अपने निर्माण के आरंभिक दौर में दोनों ही ग्रह गलित या अद्विगलित अवस्थाओं से होकर गुजरे हैं तथा एक समय आयरन और कोबाल्ट सदृश भारी पदार्थों के उनके केन्द्र की ओर अभिगमन करने से ही उच्च घनत्व काले क्रोड (कोर) पदार्थ तथा कम घनत्व वाले पृष्ठीय पदार्थ की सृष्टि हुई।

हम उल्लेख कर चुके हैं कि शुक्र की संहति पृथ्वी की संहति की तुलना में 1.9 प्रतिशत कम है। लेकिन हम शुक्र का “तोल” कैसे निकालें? या फिर किसी भी खगोलीय पिंड की संहति कैसे निकाली जाए? दरअसल, खगोलीय पिंडों की संहतियों को उनके परस्पर गुरुत्वीय आकर्षणों द्वारा ही ज्ञात किया जा सकता है। अगर हम तारायुगमों को लें तो गुरुत्वीय आकर्षण के कारण युगम का हर तारा एक ही संहति-केंद्र (जिसे केंद्रक या बैरीसेंटर भी कहते हैं) के चारों ओर एक दीर्घवृत्तीय कक्षा में घूर्णन करता है; और दीर्घवृत्त के दीर्घ अक्ष तथा कक्षीय अवधि से तारों की संहतियां निकाली जा सकती हैं। सूर्य की संहति उन ग्रहों पर लगने वाले इसके गुरुत्वीय आकर्षण द्वारा निकाली जाती है जो किसी ग्रहीय कक्षा के अर्द्धदीर्घ अक्ष तथा उसकी अवधि के परस्पर संबंध को निर्धारित करती है। पृथ्वी की संहति चंद्रमा पर उसके द्वारा आरोपित किए जाने वाले गुरुत्वीय बल, जो चंद्रमा की कक्षा के आकार और उसकी अवधि का निर्धारण करती है, द्वारा निकाली जाती है। लेकिन किसी भी ग्रह की संहति को उसके द्वारा सूर्य पर लगने वाले गुरुत्वीय आकर्षण द्वारा निकाल पाना संभव नहीं है क्योंकि तुलनात्मक रूप से सूर्य की संहति बहुत अधिक होती है। अंतरिक्ष युग में प्रवेश करने के बाद ग्रहों के पास से गुजरते अंतरिक्षयानों के पथों के अध्ययन द्वारा ग्रहीय संहतियों को शुद्धतापूर्वक निकालना संभव हो पाया है। ऐसे में शुक्र की संहति को अंतरिक्ष युग से पूर्व कैसे निकाला जाता होगा जबकि शुक्र का अपना कोई असल उपग्रह भी नहीं है? दरअसल, इसे एक रोचक विधि द्वारा ज्ञात किया जाता था। पृथ्वी की कक्षा का अर्द्धव्यास 1.5 करोड़ किलोमीटर जबकि शुक्र की कक्षा का अर्द्धव्यास 1.1 करोड़ किलोमीटर है। अतः अपनी अंतर्युतियों के दौरान जब शुक्र पृथ्वी और सूर्य के बीच से होकर गुजरता है तब पृथ्वी और शुक्र के मध्य की दूरी मात्र 4 करोड़ किलोमीटर रहती है। शुक्र के कक्षीय पथ में पृथ्वी के आकर्षण के कारण अच्छा-खासा विचलन ला पाने में यह कम दूरी काफी सहायक होती है। शुक्र के कक्षीय पथ में उत्पन्न इस क्षोभ (परटर्बेशन) के मापन द्वारा इसकी संहति को पृथ्वी की तुलना में 0.81 गुना आंका गया। अंतरिक्ष यानों द्वारा लिए गए अद्यतन मापनों ने इस परिणाम की पूरी तरह से पुष्टि की है।

पृथ्वी से 0.81 गुना सहंति रखने वाले तथा उससे थोड़े ही कम अद्विद्यास के शुक्र की सतह पर गुरुत्वीय त्वरण का मान पृथ्वी के 0.98 मीटर प्रति वर्ग सेकंड की तुलना में 0.88 मीटर प्रति वर्ग सेकंड है। शुक्र ग्रह पर पलायन वेग, जो उसकी सतह से छोड़े गये किसी प्रक्षेपक (या अंतरिक्ष यान) द्वारा उसके गुरुत्वीय बंधन को तोड़कर निकल जाने के लिए आवश्यक वेग 10.8 किलोमीटर प्रति सेकंड है (पृथ्वी के लिए यह मान 11.2 किलोमीटर प्रति सेकंड है)। गौरतलब है कि यह वेग केवल शुक्र के गुरुत्वीय बंधन से ही पिंड को मुक्त कर सकता है; सौर जगत के साथ वह फिर भी परिबद्ध रहता है। सौर जगत से भी उसे मुक्त करने के लिए कहीं अधिक वेग की आवश्यकता होती है (और तब भी वह हमारी आकाशगंगा—मंदाकिनी के साथ परिबद्ध रहेगा जिससे मुक्त होने के लिए उसे और भी अधिक वेग की आवश्यकता होगी)।

हमारे सौर जगत के सभी ग्रह ऐसी कक्षाओं में परिक्रमण करते हैं जो एकदम से वृत्तीय न होकर थोड़े से दीर्घवृत्तीय होते हैं जिनकी एक नाभि (फोकस) पर सूर्य होता है। दीर्घवृत्त के लंबोत्तरेपन को उसकी उत्केंद्रता



चित्र - 2 : दीर्घवृत्तीय कक्षा (बुध की कक्षा से समानता रखते 0.2 उत्केंद्रता वाले एक दीर्घवृत्त को चित्र में दर्शाया गया है)।  $a$  = अपसौर दूरी,  $b$  = उपसौर दूरी, सूर्य एक फोकस पर स्थित है।  $x$  तथा  $y$  क्रमशः अद्वीर्ध तथा अद्वलघु अक्ष हैं। गौर करें कि  $e = 0.2$  के लिए भी दोनों अक्षों में बहुत अधिक विभेद नहीं है। पश्चगतिक घूर्णन की भी चित्र में दिखाया गया है।

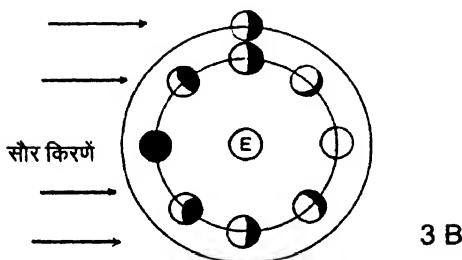
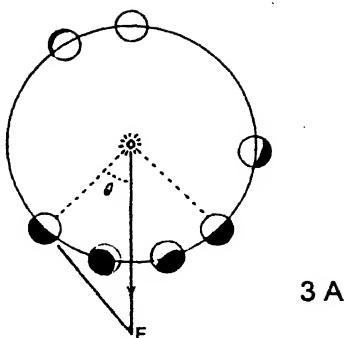
“e” द्वारा नापा जाता है। अगर अपनी कक्षा में चक्कर काटते ग्रह की सूर्य से दीर्घतम (अपसौर) तथा लघुत्तम (उपसौर) दूरियां क्रमशः “a” तथा “b” हैं, तो  $a/b = (1+e)/(1-e)$ । दीर्घवृत्त के लंबोतरेपन, जिसे अद्वदीर्घ अक्षा तथा अद्वलघु अक्ष के अनुपात  $x/y$  द्वारा मापा जाता है, को  $e^2 = (x^2-y^2)/x^2$  सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है (चित्र 2)। सौर जगत के सभी पिंडों में ग्रहीय कक्षाओं की उत्केंद्रता के मान सामान्यतया काफी कम होते हैं ( $e << 1$ )। क्षुद्रग्रहों के मध्यम मान होते हैं ( $e < 1$ ) जबकि धूमकेतुओं की कक्षाओं के उत्केंद्रता मान अमूमन “1” के करीब जा पहुंचते हैं (लेकिन 1 से ये मान अल्प रूप से कम ही होते हैं)। किसी पिंड की कक्षा उत्केंद्रता के 1 से अधिक हो जाने का अर्थ उस कक्षा का अतिपरवलयिक होना है और ऐसा पिंड सौर जगत के साथ गुरुत्वीय रूप से बंधा नहीं रह सकता है। ग्रहों में सबसे समीपस्थ बुध तथा उससे दूरस्थ प्लूटो ही केवल काफी उत्केंद्री कक्षाओं वाले होते हैं जिनकी उत्केंद्रताओं के मान क्रमशः 0.21 तथा 0.27 हैं। मंगल की कक्षा की उत्केंद्रता “e” का मान भी अपेक्षाकृत अधिक, 0.093 के बराबर होता है। अतः यह बीच-बीच में पृथ्वी के काफी नजदीक चला आता है। (सितंबर, 2003 में ऐसा घटित हुआ था)। शुक्र की कक्षा लगभग वृत्तीय है जिसकी उत्केंद्रता सभी ग्रहों में न्यूनतम यानी 0.0068 है; तथा इसकी अपसौर व उपसौर दूरियां क्रमशः 10.89 करोड़ तथा 10.74 करोड़ किलोमीटर हैं।

अब हम शुक्र द्वारा इसके 584 दिनों के संयुतिकाल (साइनॉडिक पीरियड) के दौरान प्रदर्शित की जाने वाली कक्षाओं के पूर्ण चक्र की विशद रूप से चर्चा करेंगे। सूर्य के चारों ओर का एक चक्कर शुक्र 224.7 दिनों की अवधि में पूरा करता है जबकि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर परिक्रमण करने में 365.2 दिन लगाती है। अतः पृथ्वी से देखने पर  $(1/224.7^1/365.2)^1 = 584$  दिनों के अंतराल के बाद सूर्य के सापेक्ष शुक्र एक सी ही स्थिति में आ जाता है। इस अंतराल को “संयुतिकाल” की संज्ञा दी जाती है।

हम “अंतर्युति” यानी जब शुक्र पृथ्वी और सूर्य के बीच से गुजरता है, से शुरूआत करते हैं। जैसा कि पहले व्याख्या की गई है, केवल विरल

अवसरों पर ही यह अंतर्युति के समय सौर पाद या सूर्य के किनारे से गुजरता (यानी पारगमन करता) दिखाई पड़ता है। अधिसंख्य अवसरों पर या तो यह सूर्य के थोड़े उत्तर या फिर उसके थोड़े दक्षिण की ओर से गुजरता है। शुक्र की अंतर्युति “नवचंद्र” (अमावस्या) की तरह ही होती है; इसका अदीप्त हिस्सा पृथ्वी की ओर होने से इसे अवलोकित नहीं किया जा सकता है। लेकिन अनेक अवसरों पर जब यह सूर्य के काफी नजदीक होता है तो शुक्र की अदीप्त चकती एक चमकीले बलायाकार छल्ले से घिरी नजर जाती है (जो नवचंद्र की स्थिति से भिन्न है)। यह घटना शुक्र के सघन परिमंडल से होकर गुजरने वाली सौर किरणों के अपवर्तन के कारण होती है (हालांकि इसे दूरबीन द्वारा प्रेक्षित किया जा सकता है, इसमें एक सावधानी यह बरतनी होगी कि कहीं सूर्य दूरबीन के दृश्य क्षेत्र में न आ जाए; अतः प्रशिक्षित प्रेक्षकों के सिवाय अन्य व्यक्तियों को इसे अवलोकित नहीं करना चाहिए)।

अंतर्युति के बाद पूर्वी क्षितिज पर शुक्र सूर्योदय से पहले सूर्य के नजदीक दिखाई देना शुरू होता है। यह कटे चंद्र जैसी यानी धन्वाकार कला (क्रीसेंट फेज) का प्रदर्शन करता है लेकिन परिमंडलीय अपवर्तन के कारण ही इसका आकार कटे चंद्र से एकदम भिन्न होता है (चित्र १)। अब जैसे-जैसे शुक्र और सूर्य के बीच की दूरी बढ़ती है, यह अपनी अग्रगत कलाओं का प्रदर्शन करने लगता है तथा सूर्योदय के समय पूर्वी आकाश में यह सूर्य से अधिक ऊँचाई पर दिखाई देता है। कोरी आंखों से देखने पर दिनोंदिन इसकी चमक बढ़ती दिखाई देती है। लेकिन यहां दो विपरीत प्रभाव कार्य करते हैं। एक तरफ तो क्योंकि इसका अधिकतर दीप्त भाग हमारी ओर होता है इसकी चमक बढ़ जाती है। दूसरी तरफ क्योंकि पृथ्वी-शुक्र दूरी बढ़ती जाती है, इसकी चमक भी थोड़ी मंद पड़ जाती है। इन दोनों विपरीत प्रभावों का कुल नतीजा यह होता है कि अंतर्युति के ३६ दिनों बाद शुक्र अपनी महत्तम चमक को प्राप्त कर लेता है जब सूर्य से यह ३५ अंश दूर प्रतीत होता है तथा सूर्य से इसकी दूरी तब भी बढ़ ही रही होती है। शुक्र द्वारा अर्जित किए गए “अर्द्धचंद्र” कला (अर्द्धक कला) से बहुत पहले ही ऐसा घटित होता है जब सूर्य से इसका कोणीय अंतराल (यानी प्रसर कोण) महत्तम होता है।



चित्र - 3 : शुक्र के कला चक्र (फेज साइकिल) की चंदमा के कला चक्र के साथ तुलना। 'A' महत्तम प्रसर कोण की स्थिति तथा "अर्द्धकला" को दर्शाता है। E पृथ्वी की स्थिति है [कला को दर्शाने के लिए शुक्र को बहुत अधिक आवर्धित करके दिखाया गया है]। यह विशेष रूप से गौर करने की बात है कि चंदमा के लिए "अर्द्धचंद्र" की स्थिति एक चौथाई कला चक्र पर होती है, लेकिन शुक्र पर यह बात लागू नहीं होती है।

अंतर्युति के 72 दिनों बाद इसका प्रसर कोण (46 अंश) महत्तम मान को प्राप्त होता है जब यह सूर्योदय के समय पूर्वी आकाश में सर्वाधिक ऊंचाई पर दिखाई पड़ता है। इस समय सूर्य-शुक्र-पृथ्वी के बीच का कोण ठीक-ठीक 90 अंश के बराबर होता है जब शुक्र को पूर्ण रूप से "अर्द्ध कला" का प्रदर्शन करना चाहिए। लेकिन जैसा कि श्रोटर द्वारा 1792 में अवलोकित किया गया था, पूर्ण रूप से अर्द्धकला को शुक्र इसके कुछ दिनों बाद ही अर्जित करता है। इस घटना को "श्रोटर प्रभाव" का नाम दिया जाता है तथा ऐसा माना जाता है कि शुक्र के सघन परिमंडल में अपवर्तन द्वारा ही यह घटना घटित होती है। महत्तम प्रसर कोण (46 अंश) के मापन द्वारा "सूर्य-शुक्र" दूरी  $D_v$  तथा "सूर्य-पृथ्वी" दूरी  $D_p$  के बीच के अनुपात को इस सूत्र द्वारा आसानी से ज्ञात किया

जा सकता है :  $D_v/D_s = \sin 46^\circ$  (चित्र 3)। अंतर्युति के समय, पृथ्वी और शुक्र के बीच की दूरी "D<sub>v</sub>-D<sub>s</sub>" के बराबर होती है। एक रेडार स्पंदन को पृथ्वी से शुक्र तक भेजकर परावर्तित होने वाले स्पंदन को पृथ्वी तक वापस लौटने में लगने वाले समय के परिशुद्ध मापन द्वारा पृथ्वी और शुक्र के बीच की दूरी को यथार्थ रूप से 1962 में मापा गया था। इस तरह "D<sub>v</sub>-D<sub>s</sub>" तथा  $D_v : D_s$  द्वारा पृथ्वी-सूर्य दूरी (खगोलीय इकाई) को शुद्धतापूर्क निकालना संभव हो पाया है।

अद्वैत कला के बाद शुरू की चकती अधिकाधिक दिखाई पड़ने लगती है। लेकिन अब यह सूर्य के नजदीक होती जाती है तथा इसकी चमक भी घटती जाती है। अंतर्युति के 292 दिनों, यानी संयुति काल की अद्वैत अवधि के बाद, पृथ्वी से देखे जाने पर शुक्र सूर्य की दूसरी ओर नजर आता है। इसे "बाह्य युति" की संज्ञा दी जाती है। इसका संपूर्ण दीप्त भाग पूर्णचन्द्र की तरह तब हमारी ही ओर होता है, लेकिन सूर्य की दिशा में स्थित होने से इसे तब अवलोकित नहीं किया जा सकता। बाह्य युति के बाद संध्या काल में यह पश्चिमी आकाश में दिखाई देने लगता है। बाह्य युति के 220 दिनों बाद पश्चिमी आकाश में इसका प्रसर कोण महत्तम हो जाता है तथा बाह्य युति के 256 दिनों बाद जब सूर्य से 35 अंश के कोण पर होकर यह धीरे-धीरे उसके पास सिमटने लगता है, पश्चिमी आकाश में यह तब अपनी महत्तम चमक को अर्जित कर लेता है। पश्चिमी आकाश में महत्तम प्रसर कोण अर्जित करने के कुछ दिनों पूर्व "श्रोटर प्रभाव" के कारण शुक्र अद्वैतचन्द्र सदृश कला का प्रदर्शन करता है।

अपनी कलाओं के पूर्ण चक्र के दौरान कोरी आंखों से दिखने वाली शुक्र की चमक में ढाई के गुणांक जितना ही फेर-बदल आता है जो कम होने के कारण आसानी से पकड़ में नहीं आ पाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हर वक्त दो विपरीत प्रभाव (कारक) कार्य कर रहे होते हैं। जब चम्पकी चकती का अधिक दीप्त हिस्सा हमारी तरफ होता है तब यह हमसे जाता प्रतीत होता है। इस तथ्य पर भी आपने गौर किया होगा कि चंद्रमा के "कला चक्र" तथा शुक्र के "कला चक्र" के बीच अच्छा-खासा अंतर होता है। इसे चित्र 3 में भी दर्शाया गया है जहां दोनों की तुलना की गई है।

महत्तम युति की स्थिति में शुक्र का दृश्य कांतिमान  $-4.40$  होता है। तुलना की दृष्टि से, सबसे चमकदार तारे सिरियस (व्याध या लुध्दक) के लिए यह मान  $-1.57$  जबकि बृहस्पति के लिए  $-2.6$  होता है। दो कांतिमानों के बीच का अंतर उनकी द्युतियों के अनुपात के साथ इस सूत्र द्वारा संबंधित होता है :  $\Delta_M = M_1 - M_2 = -2.5 \log B_1/B_2$ ; जिसका अर्थ यह है कि जितना कम पिंड का कांतिमान होगा उसकी द्युति उतनी ही अधिक होगी। अतः शुक्र बृहस्पति की तुलना में  $5.2$  गुना और सिरियस की तुलना में  $13.5$  गुना अधिक चमकदार होता है। कोरी आंखों से दिखाई पड़ने वाले सबसे कम चमकीले तारे का कांतिमान  $-6$  होता है, शुक्र की तुलना में जिसकी द्युति करीब  $15000$  गुना कम होती है।

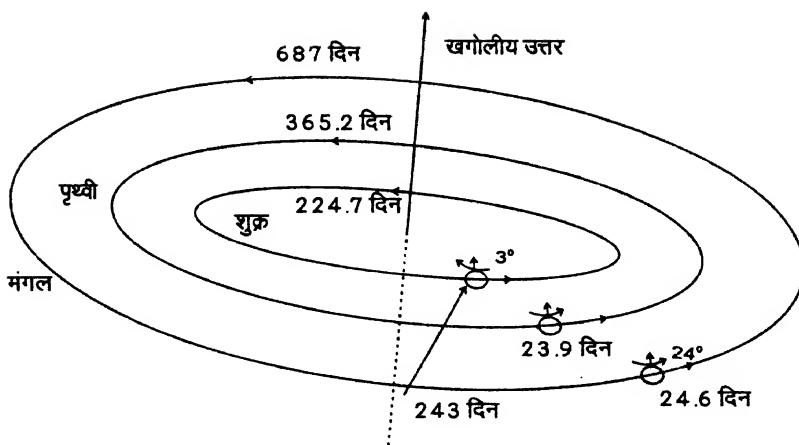
\* \* \*

## अध्याय दो

# शुक्र पर एक “दिन” और एक “रात”

हमारे सौर जगत के सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर अपनी अनन्य (यूनीक) कक्षीय अवधियों के साथ, जो सूर्य से उनकी दूरियों द्वारा निश्चित होती है, चक्कर काटते हैं। जिन दूरियों पर ग्रह स्थित होते हैं वे बोडे-टाइटियस नियम कहलाने वाले एक आनुभाविक नियम का अनुपालन करते हैं। इस नियम के अनुसार अगर हम संख्याओं की एक श्रेणी 0, 3, 6, 12, ..., को लेकर उसकी प्रत्येक संख्या में 4 जोड़कर 10 का भाग दें तो औसत पृथ्वी-सूर्य दूरी (खगोलीय इकाई) की इकाइयों के रूप में ग्रहों की तत्संबंधी दूरियां हमें प्राप्त होती हैं। यह नियम यूरेनस तक तो काफी ठीक-ठाक कार्य करता है लेकिन वरुण (नेप्च्यून) के मामले में यह गहन विसंगति का प्रदर्शन करता है तथा प्लूटो के मामले से पूरी तरह से विफल हो जाता है। मंगल और बृहस्पति के बीच में मौजूद “क्षुद्रग्रहों” को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर लगभग एक ही तल तथा एक ही दिशा में घूमते हैं। अगर हम पृथ्वी के कक्षीय तल (क्रांतिवृत्तीय तल) को निर्देश (तल) के रूप में ले तो ध्रुव तारे की ओर इस तल पर लिया जाने वाला लंब “खगोलीय उत्तर” को निरूपित करता है (पृथ्वी का धूर्णन अक्ष ध्रुव तारे की ओर होता है तथा खगोलीय उत्तर के साथ यह  $23\frac{1}{2}$  अंश का कोण बनाता है)। खगोलीय उत्तर से देखने पर सभी ग्रह वामावर्त दिशा में सूर्य का चक्कर काटते हुए लगते हैं (चित्र 4)।

ग्रहों की अपनी धूर्णन गति होती है लेकिन न तो धूर्णन अक्षों की दिशाएं और न ही उनके धूर्णन वेग किसी नियमित पैटर्न से बंधे होते हैं। अतः जहां हमारी पृथ्वी एक ऐसे कक्ष के इर्द-गिर्द धूर्णन करती है जिसकी वापर्ति ध्रुव तारे की ओर होती है (यह अक्ष भी खगोलीय उत्तर के चारों ओर  $25,800$  वर्ष की अवधि के साथ घूमती है, जो इसकी



चित्र - 4 : मंगल, पृथ्वी और शुक्र के कक्षीय काल, अक्षीय घूर्णन तथा खगोलीय उत्तर के साथ उनके घूर्णन अक्षों की आनति या झुकाव।

पुरस्सरण गति कहलाती है) तथा उत्तर दिशा से देखने पर यह गति वामावर्त होती है जिसकी अवधि 23 घंटे 56 मिनट होती है, वहीं शुक्र ग्रह का घूर्णन एक ऐसे अक्ष के इर्द-गिर्द होता है जिसकी खगोलीय उत्तर से झुकाव या आनति (इंक्लिनेशन) 3 अंश के बराबर होती है लेकिन इसकी घूर्णन अवधि बहुत कम, 243 पृथ्वी दिवसों के बराबर और वह भी कक्षीय गति (जो उत्तर दिशा से देखने पर दक्षिणावर्त होती है) की विपरीत दिशा में होती है। [यूरेनस एक ऐसी धुरी के चारों ओर घूर्णन करता है जो लगभग कक्षीय तल में स्थित होती है तथा खगोलीय उत्तर के साथ जिसकी आनति 82 अंश के बराबर होती है]। अतः ग्रहों की घूर्णन गतियों के दर और उनकी दिशाएं उन "दुघर्टनाओं" का परिणाम लगती हैं जिनमें ग्रहाणुओं के भिड़तों के चलते ही ग्रहों का सृजन हुआ था। शुक्र के अत्यंत धीमे और पश्चगतिक घूर्णन के कारण असाधारण रूप से विस्तारित "दिन-रात" चक्र, जो 117 पृथ्वी दिवसों के बराबर होता है, की सृष्टि होती है, जिस दौरान सूर्य पश्चिमी क्षितिज से उदय होकर पूर्व में ढलता है। लेकिन इसे समझने से पहले आइए यह जान लें कि शुक्र के घूर्णन का शुद्धतापूर्वक मापन कैसे किया गया था।

जैसे कि अध्याय एक में उल्लेख किया जा चुका है, शुक्र एक बादलों से ढका ग्रह होने के कारण (दृश्य परिसर में) इसकी सतह का अध्ययन

कर पाना संभव नहीं था; अतः इसकी कक्षीय अवधि को निकालना समस्यायुक्त था। पराबैंगनी परिसर में लिए गए अवलोकनों में शुक्र के परिमंडल में कुछ चिन्ह परिलक्षित होते हैं लेकिन इन अवलोकनों द्वारा घूर्णन अवधि का अनुमान अनिर्णायक ही रहा। ये चिन्ह परिमंडलीय गतियों के कारण भी बन सकते थे और पृथ्वीय गति के साथ इनका कोई सरोकार होना आवश्यक नहीं था। लेकिन इससे एक बात का संकेत तो प्राप्त हुआ ही कि शुक्र की घूर्णन गति अत्यंत धीमी होती है। अतः यह परिकल्पना की गई कि (चन्द्रमा के घूर्णन के साथ पृथ्वी के चारों ओर उसके परिक्रमण के ज्वारीय अभिबंधन के समान ही) शुक्र का घूर्णन उसके परिश्रमण के साथ अभिबद्ध है। शुक्र की ठीक-ठीक घूर्णन गति को सूक्ष्मतरंगों के प्रयोग द्वारा रेडार साउंडिंग विधियों द्वारा ही निकालना संभव हो पाया। उपयुक्त तरंगदैर्घ्य पर सूक्ष्मतरंगों को शुक्र के बादलों से किसी किस्म के अवरोध का सामना नहीं करना पड़ता, अतः उनके लिए उसकी सतह तक पहुंचना संभव हो पाता है। रेडियो संसूचकों में सुग्राही संकरण (हेटरोडाइन) संसूचक तकनीकों के इस्तेमाल के चलते शुक्र के तल द्वारा परावर्तित इन तरंगों को पृथ्वी पर स्थित विशाल दूरबीनों द्वारा संसूचित किया जाना संभव हो सका। इन परावर्तित तरंगों की आवृत्ति में उत्पन्न डाप्लर विस्थापन द्वारा ही शुक्र की घूर्णन गति का आकलन किया गया। तरंगों को उत्सर्जित करने वाले स्रोत और उनको ग्रहण करने वाले संग्राहक (रिसीवर) जब तरंगों की संचरण दिशा में एक दूसरे के सापेक्ष गति करते हैं तो उन तरंगों की आवृत्ति में आने वाले आभासी परिवर्तन को ही डाप्लर विस्थापन की संज्ञा दी जाती है। किसी पास आते (रेल के) इंजन की “तीक्ष्ण” होती तथा दूर जाते इंजन की “क्षीण” पड़ती सीटी की चिर-परिचित ध्वनियां इसका उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। (श्रवण तंत्र द्वारा) ग्रहण की जाने वाली आवृत्ति नजदीक आते स्रोत द्वारा उत्पन्न आवृत्ति से अधिक तथा दूर जाते स्रोत द्वारा उत्पन्न आवृत्ति से कम होती है; और आवृत्ति का यह आभासी परिवर्तन “डाप्लर विस्थापन” कहलाता है। विद्युत-चुंबकीय तरंगों (जैसे प्रकाश तरंगों, रेडार तरंगों आदि) को लेने पर आवृत्ति “f” में आया डाप्लर विस्थापन “Δf”, स्रोत और संग्राहक के मध्य की सापेक्ष गति “v” के साथ इस व्यंजक

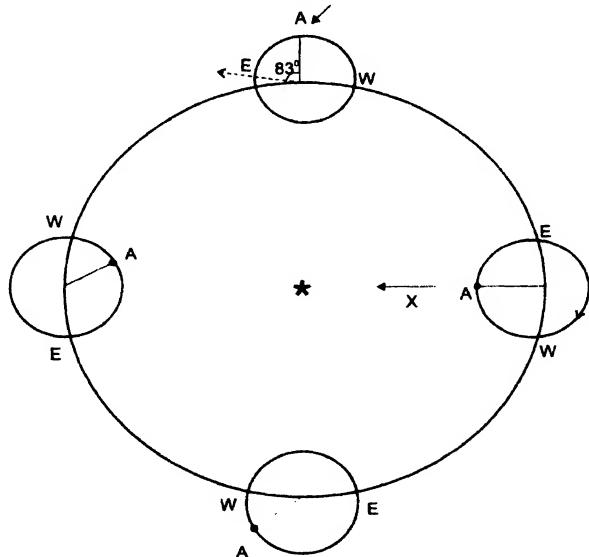
द्वारा संबद्ध होता है :  $\Delta f = V/c$  जहां  $V$  का मान बहुत अधिक नहीं है। (दृश्य परिसर में डाप्लर विस्थापन के अध्ययन द्वारा ही हमारे ब्रह्मांड के प्रसरण के बारे में अनुमान लगाया गया था)। किसी तरंग के गतिशील तल द्वारा परावर्तित होने पर भी डाप्लर विस्थापन की घटना परिलक्षित होती है। अब शुक्र जब अंतर्युति की स्थिति में होता है तब दृश्य रेखा के लंबवत् वह गुजर रहा होता है तथा दृश्य रेखा की दिशा में तब इसका लगभग कोई भी अवयव नहीं होता है। लेकिन इसके घूर्णन के चलते इसका एक किनारा हमारी ओर आता और दूसरा किनारा हमसे दूर निकलता नजर आता है। अतः दो भिन्न किनारों से परावर्तित तरंगों के डाप्लर विस्थापन भिन्न होंगे और इससे घूर्णन वेग निकाला जा सकता है। हालांकि “ $V$ ” का मान कम होने पर विस्थापन भी कम होगा लेकिन रेडियो संसूचन तकनीकें अब इस हद तक विकसित हो चुकी हैं कि आवृत्ति में परिवर्तन 1 भाग के एक अरबवें हिस्से से भी अधिक सुग्राहिता से मापे जा सकते हैं। अतः घूर्णन को परिशुद्धता से मापना संभव हो पाया। इस तरह यह उद्घाटित हुआ कि शुक्र अपनी धुरी पर 243 पृथ्वी दिवसों की अवधि में एक घूर्णन पूर्ण करता है तथा इस घूर्णन की दिशा पश्चगतिक (यानी इसकी परिक्रमण दिशा के विपरीत) है। रेडार साउंडिंग द्वारा न केवल इसका घूर्णन बल्कि इसके “वास्तविक” व्यास को भी यथार्थता से मापना संभव हुआ। अंतर्युति पर पृथ्वी और शुक्र के मध्य की दूरी को भी परावर्तन से पहले और इसके बाद के गमन काल द्वारा यथार्थता से मापना संभव हो पाया। इससे हमें “खगोलीय इकाई” का सर्वाधिक परिशुद्ध मान प्राप्त हुआ है।

बाद के अंतरिक्षयानों से रेडार तकनीकों के प्रयोग द्वारा शुक्र तल के लक्षणों का “प्रेक्षण” लिया गया है। अब तक के इतिहास में इस तरह का सर्वाधिक विशद सर्वेक्षण “मैगलन” नामक अंतरिक्षयान द्वारा 1990 के दशक के आरंभिक काल में किया गया था। शुक्र के पृष्ठीय लक्षणों की विशद जानकारी हमें अधिकांश रूप से इस अध्ययन द्वारा ही प्राप्त हुई है। इसके बारे में और अधिक चर्चा पांचवें अध्याय में की जाएगी।

अब हम शुक्र के धीमे व पश्चगतिक घूर्णन के कारण उसके “दिन” और “रात” की अवधियों में पड़ने वाले परिणामों को समझने की कोशिश

करेंगे। शुक्र का घूर्णन अक्ष उसके कक्षीय तल के लगभग लंबवत् होने के कारण उस पर ऋतुओं की कृपा नहीं होती है। पृथ्वी के कक्षीय तल के लंब के साथ उसके घूर्णन अक्ष के  $23\frac{1}{2}$  अंश के द्युकाव के कारण ही पृथ्वी पर ऋतुओं की छटाएं हमें देखने को मिलती हैं। इससे चलते पहले छह महीने उसकी उत्तरी दिशा से गुजरता हुआ प्रतीत होता है। पृथ्वी अग्रगतिक (प्रोग्रेड) घूर्णन (यानी अपनी अक्षीय गति की दिशा में ही) करती है तथा इसकी वास्तविक घूर्णन दर  $23$  घंटे  $56$  मिनट है। अतः उत्तर से दक्षिण की ओर शिरोबिंदु (जेनिथ) से होकर गुजरते हुए अगर हम आकाश में एक काल्पनिक वृत्त की कल्पना करें तो पूर्व से पश्चिम दिशा में सभी तारे इस वृत्त से  $23$  घंटे  $56$  मिनट में एक बार गुजरते दिखाई देंगे। इस वृत्त को "याम्योत्तरीय वृत्त" की संज्ञा दी जाती है तथा किसी खगोलीय पिंड के इस वृत्त से होकर गुजरने की घटना को "याम्योत्तरी गमन" कहा जाता है। दो क्रमागत याम्योत्तरी गमनों के बीच के अंतराल ( $23$  घंटे  $56$  मिनट) को उस तारे का "नाक्षत्र दिन" (साइडरल डे) कहा जाता है। लेकिन हमारा आम दिन सूर्य के याम्योत्तरी गमन के साथ समायोजित होता है। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के चक्कर काटने के कारण तारों की पृष्ठभूमि के सापेक्ष सूर्य "पूर्वाभिमुख" दिशा में करीब एक अंश से हमें विस्थापित ( $360^\circ/365 - 1$  प्रति दिन) होता दिखाई देता है। सूर्य का याम्योत्तरी गमन स्थानीय "आभासी" मध्याह्न है। लेकिन एक वर्ष की अवधि के दौरान सूर्य की आभासी उत्तर-दक्षिणी गति के कारण तथा पृथ्वी की कक्षा उत्केंद्रता, जिसके चलते इसके कक्षीय वेग में एक वर्ष के दौरान तनिक फेर-बदल आ जाता है, के कारण भी सूर्य के क्रमागत याम्योत्तरी गमन बराबर समय अंतराल पर घटित नहीं होते हैं। लेकिन हमारे "आम" दिन को सूर्य के साथ अभिबद्ध किया जाना जरूरी है तथा इसकी लंबाई भी नियत होनी चाहिए : अतः खगोलविद् "वास्तविक" सूर्य को "माध्य" सूर्य से प्रतिस्थापित कर देते हैं ओर उस अवस्था में माध्य सूर्य के क्रमागत याम्योत्तरी गमनों के बीच का समय अंतराल हमारे आम दिन की  $24$  घंटे लंबाई को निश्चित करता है। एक वर्ष की अवधि के दौरान वास्तविक सूर्य माध्य सूर्य से तनिक आगे अथवा उससे तनिक पीछे रह सकता है।

अतः असल में दो भिन्न किस्म के दिनों से हमारा वास्ता पड़ता है; एक तो नाक्षत्र दिन जो तारों के उदय और असत होने के बीच के 23 घंटे 56 मिनट के अंतराल तथा दूसरा "आम" दिन जो सूर्य के उदय और अस्त होने के बीच के 24 घंटे अंतराल को निर्देशित करता है। चूंकि पृथ्वी के कक्षीय परिक्रमण काल की तुलना में इसकी घूर्णन गति बहुत द्रुत है, दोनों के बीच का अंतर मात्र 4 मिनट होता है और इस बात को हम यह कहकर व्यक्त करते हैं कि "क्रमागत दिनों में तारे 4 मिनट जल्दी उदय होते हैं।" इस पृष्ठभूमि के बाद, आइए अब शुक्र पर होने वाले "दिन" और "रात" को समझा जाए। शुक्र का "पश्चगतिक" घूर्णन काल 243 दिनों के बराबर होता है। अतः किसी विशिष्ट तारे के लिए इसके क्रमागत यात्योत्तरी गमन 243 दिनों के अंतराल से घटित होंगे, लेकिन इनकी दिशा परिचय से पूर्व की ओर होगी। (यह अलग बात है कि चारों तरफ स्थाई व घने बादलों के परत की मौजूदगी के कारण शुक्र के अकाश में कोई भी तारा नहीं दिखाई पड़ेगा)। लेकिन पृथ्वी के विपरीत,



वित्र - 5 : शुक्र पर "दिन" और "रात"। शुक्र की 243 दिनों में अपनी धुरी पर (पश्चगतिक) घूर्णन करने तथा सूर्य की 225 दिनों में परिक्रमा करने के कारण उसकी सतह पर स्थित एक नियत बिंदु 'A' की स्थिति में सूर्य के सापेक्ष आए परिणामी परिवर्तनों को चित्र में दर्शाया गया है। बिंदु A की स्थिति को शुक्र वर्ष की एक चौथाई तुल्य अंतरालों पर दिखाया गया है।

शुक्र पर वर्ष करीब 225 दिनों का होता है – जो इसके नाक्षत्र दिन से छोटा होता है। शुक्र पर स्थित किसी प्रेक्षक को उसके आकाश में सूर्य की गति कैसे दिखाई देगी, इसे चित्र-5 द्वारा समझा जा सकता है, जो इसके एक वर्ष की अवधि के चौथाई हिस्से यानी 56 दिनों के अंतरालों से सूर्य का परिक्रमण करते शुक्र की चार भिन्न स्थितियों को दर्शाता है। चित्र में आरंभिक काल में मध्याह्न का सामना करते हुए प्रेक्षक की स्थिति को भी दर्शाया गया है। (चित्र में) X दिशा आकाश (स्पेस) की एक नियत दिशा को दर्शाती है जिसके सापेक्ष प्रेक्षक A 243 दिनों के अंतराल से घूमता है। अतः जब शुक्र बिंदु “2” पर पहुंचता है तब वह (A) 83 अंश से घूम कर मध्यरात्रि का सामना करने की स्थिति में आ जाता है। इसी तरह शुक्र की आधी अवधि यानी 112 दिनों बाद A एक बार फिर से मध्याह्न के करीब होता है तथा सूर्य और वह तब लगभग आमने-सामने होते हैं। गौरतलब है कि परिक्रमण और घूर्णन की परस्पर विपरीत दिशाओं के कारण शुक्र पर सौर दिन की लंबाई इसके वर्ष की लंबाई से छोटी होगी और इसके आकाश में सूर्य की गति पश्चिम से पूर्व की ओर होगी। गणितीय दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि 224.7 दिनों की परिक्रमण अवधि तथा विपरीत दिशा में होने वाली 243 दिनों की घूर्णन अवधि के कारण सूर्य के सापेक्ष शुक्र के प्रभावी घूर्णन का मान  $[1/224.7 + 1/243]^{-1} = 116.7$  दिनों के बराबर होगा, जो शुक्र पर एक सौर दिन की लंबाई है। साथ ही साथ सूर्योदय पश्चिम और सूर्यास्त पूर्व में दिखाई देगा!

यहां यह गौरतलब है कि पृथ्वी के संदर्भ में शुक्र का यही घूर्णन इसकी अंतर्युतियों के साथ काफी गहराई से युग्मित होता है। नतीजतन हर अंतर्युति पर शुक्र का वही भाग अमूमन पृथ्वी के सामने पड़ता है। लेकिन यह युग्मन उतना यथार्थपूर्ण नहीं है जैसा कि पहले कभी सोचा जाता था।

## अध्याय तीन

### शुक्र का परिमंडल

अंदर की ओर स्थित यानी चार अंतर्ग्रहों में से शुक्र का परिमंडल सर्वाधिक, पृथ्वी की तुलना में नब्बे गुना सघन है तथा इसकी संरचना मुख्यतया कार्बन डाइ-आक्साइड से ही हुई है। बुध का अपना कोई परिमंडल नहीं है। तीन अन्य ग्रह – शुक्र, पृथ्वी तथा मंगल परिमंडल की दृष्टि से एक दूसरे से बहुत अधिक भिन्नता रखते हैं। मंगल के परिमंडल में भी कार्बन डाइ-आक्साइड ही मुख्य घटक है लेकिन मंगल का परिमंडल अति विरल है, पृथ्वी की तुलना में इसकी सघनता  $1/200$  गुना मात्र है। पृथ्वी के वायुमंडल का मुख्य घटक नाइट्रोजन ( $78$  प्रतिशत) तथा इसमें मौजूद अन्य महत्वपूर्ण गैस आक्सीजन ( $21$  प्रतिशत) हैं जबकि कार्बन डाइ-आक्साइड एक गौण घटक मात्र है। स्पष्ट है कि आज इन ग्रहों के परिमंडल उन आद्य परिमंडलों जैसे नहीं हो सकते जिनके साथ इन ग्रहों की उत्पत्ति हुई थी। आद्यसौर नीहारिका (प्रोटोस्टार नेबुला), जिससे ग्रहों की उत्पत्ति हुई थी, का संघटन एकदम भिन्न था तथा बृहस्पति व शनि सदृश बाह्य भीमकाय गैसीय ग्रहों, जिनका परिमंडल अधिकांश रूप से हाइड्रोजन ( $90$  प्रतिशत) तथा हीलियम ( $10$  प्रतिशत) से निर्मित है, में ही अब यह संघटन परिरक्षित रह पाया है। अंतर्ग्रहों के आद्य परिमंडल में भी हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन, अमोनिया, कार्बन मोनोआक्साइड आदि गैसें मौजूद रही होंगी। रासायनिक दृष्टि से ऐसे परिमंडल “अपचायक” (रिड्यूसिंग) परिमंडल का गुणधर्म अपने अंदर रखते हैं। इन ग्रहों के लघु आकार के कारण उनके निम्न गुरुत्व तथा सूर्य से उनकी नजदीकी के कारण उच्च तापमान के चलते भी हल्की गैसें उनके परिमंडलों से पलायन कर गईं।

इन ग्रहों के अंदर अल्प जीवन काल (अर्द्ध आयु) वाले रेडियोसक्रिय नाभिकों की क्षय प्रक्रिया के चलते बहुत अधिक परिमाण में ऊष्मा का

निस्सरण हुआ होगा। नतीजतन अतीत में इन ग्रहों की ज्वालामुखीय सक्रियता भी काफी प्रबल रही होगी। इन ग्रहों की सतह के अंतरिक्ष से लिए एक प्रेक्षणों द्वारा इस बात के स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। विगत की इस ज्वालामुखी सक्रियता के कारण उनके अंदरूनी भागों से छेर सारी गैसें निकलकर उन्होंने ही अंतर्ग्रहों के “द्वितीयक परिमंडलों” का सृजन किया होगा।

इस तरह से निष्कासित सबसे महत्वपूर्ण गैस कार्बन डाइ-आक्साइड थी। लेकिन पृथ्वी पर प्रकट होने वाले वनस्पति जगत ने कार्बन डाइ-आक्साइड के एक बड़े परिमाण को आकसीजन में बदल दिया। बहते पानी तथा जीवन की मिली-जुली क्रियाओं ने कार्बन डाइ-आक्साइड की विपुल मात्रा को कार्बोनेटों के रूप में बदल दिया, जिससे पृथ्वी पर यह गैस एक अल्प घटक के रूप ही रह गई। फिर शुक्र क्योंकर इतना भिन्न हो पाया! इसका सतह-तापमान इतना अधिक कैसे हो गया कि पानी उस पर द्रव रूप में मौजूद रह ही नहीं सकता!

“नव” सूर्य का जब सृजन मात्र ही हुआ था तब आज की तुलना में वह 30 प्रतिशत कम देवीप्यमान था, लेकिन वह धीरे-धीरे “गरमाता” चला जा रहा है। तारकीय विकास संबंधी हमारी समझ, खासकर सौर द्रव्यमान रखने वाले नवनिर्मित तारे अपने सृजन के तुरंत बाद जिन चरणों से होकर गुजरते हैं, द्वारा यह तथ्य भली-भांति स्थापित हुआ है। अरबों वर्ष पूर्व के अतीत में शुक्र का तापमान उसके सतह पर मौजूद लरजते-गरजते जल सागरों के तापमान से ही मिलता-जुलता रहा होगा। लेकिन जैसे-जैसे सूरज गरमाता गया वैसे-वैसे अधिकाधिक वाष्णव होता गया (और इस दृष्टि से पृथ्वी और शुक्र के बीच का अंतर काफी महत्वपूर्ण था)। नतीजतन शुक्र के परिमंडल में जलीय वाष्ण की अधिकता हो गई। जलीय वाष्ण दृश्य सौर विकिरण को तो अपने में से गुजरने देता है लेकिन अवरक्त विकिरण का वह अवशोषण कर लेता है। अतः दृश्य सौर विकिरणों से उत्पात शुक्र की सतह का तापमान अंतरिक्ष में विकिरणों को कुशलतापूर्वक वापस न लौटा सकने के कारण पृथ्वी की तुलना में अधिक हो गया। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो शुक्र का हरित गृह प्रभाव (ग्रीन हाउस इफेक्ट) अधिक शक्तिशाली हो उठा। नतीजतन

इसके सागरों से पानी पूर्णतया वाष्पित हो गया। पानी के अभाव के कारण कार्बन डाइ-आक्साइड का कार्बोनेटों के रूप में स्थिरीकरण नहीं हो पाया और यह उसके परिमंडल में जा समाया। उल्लेखनीय है कि कार्बन डाइ-आक्साइड एक प्रभावी “ग्रीन हाउस गैस” भी है। अतः शुक्र पर इस (ग्रीन हाउस) प्रभाव ने एक “संघातक प्रभाव” का रूप धारण कर लिया। किसी गैस द्वारा ग्रीन हाउस प्रभाव को प्रदान किए जाने वाले योगदान को निश्चित करने में उस गैस द्वारा 5 से लेकर 10 माइक्रान (एक माइक्रान मीटर के दस लाखवें हिस्से के बराबर होता है) के तरंगदैर्घ्य परिसर में विकिरणों को अवशोषित करने की क्षमता ही मुख्य भूमिका निभाती है; और कंपन-धूर्णन आणविक बैंडों के कारण ही ये अवशोषण होते हैं। आक्सीजन तथा नाइट्रोजन जैसे सममित द्विपरमाणुक (डाइएटामिक) गैसों के लिए यह संक्रमण (ट्रांजिशन) वर्जित होता है। अतः ग्रीनहाउस तापन में ये गैसें अपना योगदान नहीं देती हैं। अलबत्ता, मीथेन, कार्बन-डाइ-आक्साइड आदि संदूषक गैसें ग्रीन हाउस प्रभाव में अपना योगदान देती हैं तथा वाष्पित जल के योगदान के चलते तापन में इतनी अधिक वृद्धि हो जाती है कि यह (ग्रीन हाउस) प्रभाव “संघातक” हो उठता है। यही कारण है कि वायुमंडलविज्ञानी प्रदूषण को लेकर इतने चिंतित हैं तथा हमारी जलवायु पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को समझने के लिए उपयुक्त मॉडलों को विकसित करने में वे कुशलतापूर्वक जुटे हुए हैं।

### अंतरिक्ष यानों द्वारा शुक्र के परिमंडल का अध्ययन

शुक्र के परिमंडल के घटकों का स्वरूप जानने के लिए बीसवीं सदी के मध्य में विशाल दूरबीनों में रखे स्पेक्ट्रोग्राफ द्वारा इनके स्पेक्ट्रमी अवलोकन किए गए। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, शुक्र के सघन परिमंडल में गुजरते समय सूर्य-प्रकाश के अपवर्तन के चलते उत्पन्न प्रकाशीय प्रभावों, जिन्हें अंतर्युतियों (शुक्र के पृथ्वी और सूर्य के बीच से गुजरने की प्रक्रिया) के दौरान अवलोकित किया गया था, ने ऐसे परिमंडल के अस्तित्व की जानकारी दी थी। पृथ्वी पर स्थित रेडियो दूरबीनों की मदद से इसकी सतह की रेडियो छुति के मापन द्वारा इसके उच्च

सतह-तापमान (करीब 500 डिग्री सेल्सियस) को ज्ञात किया जा सका था। अलबत्ता, इसके परिमंडलीय दबाव, घटकों व उनके तापमानों तथा इसको ढकने वाले बादलों की परत के स्वरूप के बारे में विशद जानकारियां अंतरिक्ष यान आधारित अध्ययनों के शुरू होने के बाद ही प्राप्त हो सकीं। रूस (तत्कालीन सोवियत संघ) ने इस तरह के अध्ययनों का श्रीगणेश “वेनेरा” नामक अंतरिक्ष यानों की एक शृंखला को शुक्र पर भेजकर किया। लेकिन शुक्र पर दबाव व तापमान की प्रतिकूल परिस्थितियों के चलते इस दिशा में प्रथम सफलता 18 अक्टूबर, 1967 को ही हासिल हो सकी जब वेनेरा-4 खामोश होने से पहले शुक्र तल से 34 किलोमीटर की ऊँचाई तक के परिमंडल का अन्वेषण कर पाया। इस अन्वेषी यान ने शुक्र के परिमंडलीय दबाव को पृथ्वी के वायुमंडलीय दबाव के 75 गुना के बराबर नापा तथा उस ऊँचाई पर परिमंडल के 95 प्रतिशत भाग को कार्बन डाइ-आक्साइड से निर्मित पाया। वेनेरा-4 के (शुक्र के परिमंडल में) प्रवेश करने के मात्र एक दिन बाद संयुक्त राज्य अमेरिका का मैरिनर-5 यान शुक्र के पास से होकर गुजरा और 3391 किलोमीटर की दूरी से उसका प्रेक्षण कर यह उद्घाटित किया कि शुक्र का कोई नैज चुंबकीय क्षेत्र नहीं है। मैरिनर-5 से पूर्व 1962 में मैरिनर-2 नामक यान भी शुक्र के निकट से 34833 किलोमीटर की दूरी से होकर गुजरा था तथा रेडियो परिसर में मापी गई द्युति द्वारा इसके तापमान को 425 डिग्री सेल्सियस के लगभग इसने अनुमानित किया था। मैरिनर-5 से प्राप्त आंकड़ों ने शुक्र के चारों तरफ (पृथ्वी के चारों तरफ मौजूद वान ऐलन बेल्टों से मिलते-जुलते) ट्रैप्ड आवेशित कण क्षेत्रों की मौजूदगी के बारे में संकेत दिया था क्योंकि शुक्र का अपना कोई चुंबकीय क्षेत्र नहीं है। चुंबकीय क्षेत्र के अभाव के चलते सौर वात (उच्च गतिशील आवेशित कणों की धारा जिसमें मुख्यतया इलेक्ट्रान और प्रोटान होते हैं) की शुक्र के आयनमंडल के साथ अन्योन्यक्रिया भी फर्क किस्म की होती है। पृथ्वी तल से हजारों किलोमीटर की ऊँचाई पर उसका चुंबकीय क्षेत्र सौर वात को रोक कर उसके आवेशित कणों को ध्रुवीय क्षेत्र की ओर निर्देशित कर देता है, जहां अनेक अवसरों पर वे ध्रुवीय ज्योति जैसी घटनाओं को जन्म देते हैं। लेकिन शुक्र तल से मात्र

कुछेक सौ किलोमीटर की ऊँचाई पर ही सौर वात सीधा उसके आयनमंडल के साथ आकर टकरता है।

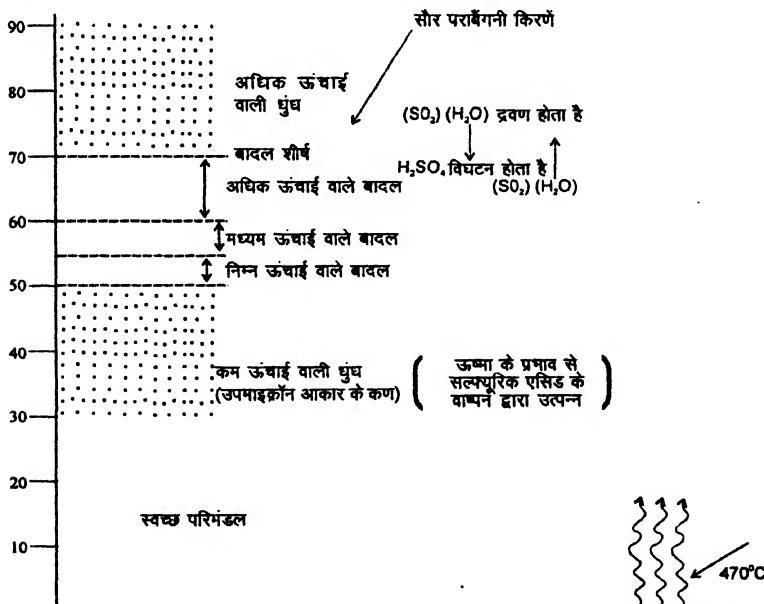
वेनेरा-7 ही वह प्रथम अन्वेषी यान था जो 1970 में शुक्र तल का सफलतापूर्वक हालांकि 28 मिनट से भी कम समय के लिए, मुआयना कर पाया था। शुक्र के परिमंडल से नीचे उतरते समय इस यान ने 48 किलोमीटर की ऊँचाई पर करीब 100 किलोमीटर प्रति सेकेंड के वेग से चलती आंधियों का निरीक्षण किया था। इन आंधियों का वेग उसकी सतह तक आते-आते घटकर 1 मीटर प्रति सेकेंड मात्र रह गया था। लेकिन बाद में किए गए अवलोकनों द्वारा यह उद्घाटित हुआ कि परिमंडल के उच्च घनत्व के कारण इस तरह की धीमी गति की सतही आंधियां भी सतह का भयंकर क्षरण कर सकती हैं। सन् 1975 में प्रक्षेपित किए गए वेनेरा-9 तथा वेनेरा-10 दोनों में ही एक-एक लैंडर तथा शुक्र का चक्कर काटने वाला एक-एक आर्बिटर मौजूद था। इन अन्वेषी यानों ने अपने प्रेक्षणों द्वारा यह पाया कि शुक्र के बादल की घनी-मोटी परत दरअसल तीन परतों में साफ तौर पर बंटी हुई हैं। ये परतें क्रमशः 70-57 किलोमीटर, 57-52 किलोमीटर तथा 52-49 किलोमीटर की ऊँचाई-परासों पर स्थित हैं। बादल के बूँदों की संरचना पर भी रहस्य का आवरण पड़ा रहा। भू-आधारित स्पेक्ट्रमिकी तथा अंतरिक्ष में किए गए प्रयोगों द्वारा यह तथ्य स्पष्ट रूप से उद्घाटित हुआ कि शुक्र का परिमंडल एकदम शुष्क है और इसलिए इसमें जल बूँदों की उपस्थिति असंभव है। इसका रहस्योद्घाटन नासा के तीन वैज्ञानिकों द्वारा किया गया जिन्होंने इन बूँदों द्वारा प्रकीर्णित व ध्वनित हुए प्रकाश के अध्ययन के आधार पर यह प्रस्तावित किया कि ये बूँदें 'सल्फ्यूरिक एसिड' की होनी चाहिए। बाद में इसकी पुष्टि भी हुई तथा पाओनियर-शुक्र मिशन द्वारा लिए गए गहन आंकड़ों के आधार पर सल्फर डाइ-आक्साइड  $\leftrightarrow$  सल्फ्यूरिक एसिड ( $\text{SO}_2 \leftrightarrow \text{H}_2\text{SO}_4$ ) की रासायनिकी को अब अच्छी तरह से समझ लिया गया है। इसी अध्याय के परवर्ती भाग में हम इसकी पुनः चर्चा करेंगे।

वेनेरा-9 तथा वेनेरा-10 के लैंडर शुक्र तल के चित्र लेने के लिए कैमरों से लैस थे। घने बादलों के परत के चलते शुक्र पर अति अंधकारमय

आकाश के होने का अंदेशा लगाते हुए इन लैंडरों में सर्चलाइट भी लगाए गए थे। लेकिन इनको इस्तेमाल करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। सूर्य-प्रकाश का लगभग 3 प्रतिशत भाग शुक्र तल तक पहुंचता है। वहां रोशनी का स्तर कुछ हद तक पृथ्वी पर घने मेघमंडित दिन जैसा ही रहता है। बाद में 'वेनेरा' अंतरिक्ष यानों ने शुक्र की भिट्टी का मुआयना भी किया। 3 नवंबर, 1973 को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अपने मैरिनर-10 नामक यान को बुध की ओर रवाना किया लेकिन उपयुक्त कक्षा में बुध का चक्कर काटने के लिए शुक्र के गुरुत्वीय क्षेत्र की मदद इस यान को लेनी पड़ी थी। 5 फरवरी, 1974 को यान शुक्र से 5793 किलोमीटर की दूरी से होकर गुजरा। शुक्र के चित्र लेने के लिए इसमें कैमरे लगे थे तथा परावैगनी परिसर में शुक्र के सुस्पष्ट अभिलक्षणों वाले बादल शीर्षों का इसने अवलोकन किया। परावैगनी परिसर में परिलक्षित इन "चिन्हों" की गति के अध्ययन द्वारा यह उद्घाटित हुआ कि शुक्र का परिमंडल इस ऊंचाई पर एक चक्कर पूरा करने में 4-5 दिन लेता है तथा इस परिसंचरण (सरकुलेशन) की दिशा इसके पृष्ठीय धूर्णन की दिशा में ही होती है। इस तरह का अतिधूर्णन (सुपर रोटेशन) वायुमंडलीय गतिकी की एक रोचक समस्या का नमूना प्रस्तुत करता है। शुक्र ग्रह से गुजरने के बाद बुध के चारों ओर एक बड़ी दीर्घवृत्तीय कक्षा का अनुसरण करते हुए मैरिनर-10 ने 29 मार्च व 21 सितंबर, 1974 तथा 16 मार्च, 1975 को तीन बार बुध के पास से गुजरते हुए उसके चित्र लिए। लेकिन इस कक्षा की अवधि तथा बुध की धूर्णन अवधि इस तरह से परस्पर संबद्ध थीं कि यान केवल इसके एक अर्द्धगोले का ही अवलोकन कर पाया।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अपना समन्वित मिशन "पाओनियर वीनस" को शुक्र के अध्ययन के लिए 1978 में हरी झंडी दिखाई। इस मिशन के अंतर्गत 20 मई, 1978 तथा 8 अगस्त, 1978 को क्रमशः दो अंतरिक्ष यान पाओनियर-12 तथा पाओनियर-13 (जिन्हें पाओनियर वीनस-1 तथा पाओनियर वीनस-2 भी कहा जाता है) छोड़े गए। पाओनियर-12, 4 दिसंबर, 1978 को शुक्र के पास पहुंचा और ग्रह का चक्कर काटने के लिए उसे एक अति दीर्घवृत्तीय कक्षा में डाल दिया

गया। यह कक्षा इस ढंग की थी कि अंतरिक्ष यान शुक्र के परिमंडल के अध्ययन के लिए अपने हर कक्षीय परिभ्रमण के दौरान एक बार शुक्र के नजदीक (इसके तल से करीब 200 किलोमीटर की दूरी पर) चला आता था। साथ ही साथ उस कक्षा के शेष प्रपथ के लिए यान उससे बहुत दूर निकल जाता था। इस कारण परिमंडलीय कर्षण (ड्रैग) का मान कम हो जाने से मिशन की आयु बढ़ गई थी। आर्बिटर में रेडियो साउंडिंग द्वारा शुक्र तल के मानचित्रण के लिए एक सिंथेटिक अपरचर रेडार मौजूद था तथा उसके आयनमंडल के मुआयने के लिए उसमें जरूरी उपकरण भी लगे थे। बादल शीर्षों के अध्ययन के लिए आर्बिटर में एक पराबैंगनी स्पेक्ट्रमापी भी मौजूद था। आर्बिटर द्वारा पराबैंगनी परिसर में लिए गए चित्रों ने शुक्र के आयनमंडल के दिवा छोर में उसके साथ सौर विकिरण में मौजूद प्रोटानों की अन्योन्यक्रिया के कारण सृजित पराबैंगनी ज्योति के माध्यम से शुक्र के परिमंडल के साथ उस पर



चित्र - 6 :  $H_2SO_4(n H_2O)$  तथा  $SO_2 + H_2O$  का पुनर्जनकण / सतह की ऊष्मा  $H_2SO_4(n H_2O)$  के वाष्णीकरण द्वारा निम्न ऊँचाई पर द्रष्टिगोचर होने वाले धुंध की सृष्टि करती है। सौर पराबैंगनी विकिरणों के प्रभाव से सल्फर डाइ-आक्साइड ( $SO_2$ ) तथा जल ( $H_2O$ ) प्रकाशरासायनिक अभिक्रिया द्वारा बादलों को जन्म देने वाले सल्फूरिक एसिड ( $H_2SO_4$ ) की बूदों का सृजन करते हैं।

आपत्ति होने वाले सौर वात के कणों की अन्योन्यक्रिया के स्वरूप को स्पष्ट रूप से उद्घाटित किया। पृथ्वी पर सौर वात आकर जब उससे टकराता है तब उसकी सतह के हजारों किलोमीटर की ऊंचाई पर उसे पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र का सामना करना होता है जो सौर वात में मौजूद कणों को ध्रुवीय क्षेत्रों (जो भौगोलिक ध्रुवों से कुछ दूर स्थित होते हैं) की ओर निर्देशित कर देता है। यहां पृथ्वी के आयनमंडल में ये कण चमकदार ध्रुवीय ज्योति को जन्म देते हैं। पाओनियर-13 (पाओनियर वीनस-2) ने शुक्र पर उत्तर कर उच्च एवं निम्न देशांतरों तथा दिवा व रात्रि छोर दोनों ही तरफ से उसके परिमंडल का उसमें मौजूद प्रोटों की मदद से अंवेषण किया। इसमें लगे क्रोमेटोग्राफ तथा द्रव्यमान स्पेक्ट्रममापी ने बादल शीर्षों और उसके सतह के बीच के परिमंडल के संघटन का अध्ययन किया। बादल शीर्षों से ऊपर 90 किलोमीटर की ऊंचाई तक एक किस्म की धुंधली-सी परत अवलोकित की गई थी जबकि 49 से 30 किलोमीटर की ऊंचाई के बीच धुंधलेपन के साथ माइक्रोन आकार के कण परिलक्षित किए गए थे। धुंधली परतों के बीच में सल्फ्यूरिक एसिड के बादल स्थित पाए गए थे।

30 किलोमीटर से कम की ऊंचाई पर शुक्र का परिमंडल स्वच्छ-निरभ्र है। शुक्र के परिमंडल में होने वाली सल्फर डाइ-आक्साइड  $\leftrightarrow$  सल्फ्यूरिक एसिड ( $\text{SO}_2 \leftrightarrow \text{H}_2\text{SO}_4$ ) रासायनिकी के बारे में अब तक जो समझ बनी है उसे चित्र 6 में दर्शाया गया है।

आर्बिटर, जिसने दिसंबर, 1978 में काम करना शुरू किया था, ने करीब चौदह वर्षों तक कार्य किया। लेकिन शुक्र के परिमंडल में बहुत कम ऊंचाई पर चले आने के कारण अक्टूबर, 1992 में यह जलकर खाक हो गया। बादल शीर्षों तथा सल्फर डाइ-आक्साइड के (इस आर्बिटर द्वारा) लंबे समय तक लिए गए प्रेक्षणों द्वारा यह आश्चर्यजनक तथ्य उद्घाटित हुआ कि बादल शीर्षों के ऊपर इस गैस का सांदरण निरंतर गिर रहा है। सांदरण की इस प्रेक्षित गिरावट की एक व्याख्या यह कहकर दी गई कि पाओनियर-वीनस यान द्वारा लिए जाने वाले प्रेक्षणों के तुरंत पूर्व ही शुक्र पर हुए एक भीषण ज्वालामुखी विस्फोट के चलते उसके परिमंडल में सल्फर डाइ-आक्साइड की विपुल मात्रा जाकर बिखर गई

होगी; ओर तभी (उस विस्फोट के बाद) उत्सर्जित गैस के सांद्रण में अब धीरे-धीरे गिरावट दर्ज की जा रही है। लेकिन बाद में “मैगलन” अंतरिक्ष यान द्वारा चलाए गए उच्च विभेदन क्षमता के रेडार सर्वेक्षण द्वारा सद्य घटित ज्वालामुखीय सक्रियता संबंधी कोई भी साक्ष्य नहीं प्राप्त हुए हालांकि बड़ी संख्या में निष्क्रिय ज्वालामुखियों के अवशेष अवश्य मिले। हेली का धूमकेतु जब पिछली बार (1985-86 ई.) उदय हुआ था तब रूस ने वेगा-1 तथा वेगा-2 नामक दो अंतरिक्ष यान उसकी प्लाज्मा के अध्ययन के लिए उसकी तरफ रवाना किए थे। इन यानों की कक्षाएं ऐसी थीं कि धूमकेतु तक पहुंचने से पहले वे दोनों शुक्र के पास से होकर गुजरे थे तथा उसके परिमंडल में दो पैराशूट जिनमें गुब्बारे आधारित यंत्र लगे थे को उतारने के साथ-साथ एक प्रोब को भी उसकी ओर भेजा गया था। गुब्बारों ने 48 घंटों तक शुक्र के परिमंडल की यात्रा की तथा पृथकी पर स्थित ‘वेरी लांग बेस लाइन’ रेडियो तकनीक द्वारा उसकी बराबर टोह ली जाती रही। इससे उसके परिमंडलीय परिसंचरणों संबंधी विशद जानकारी हाथ लगी।

हालांकि शुक्र का सतह-तापमान काफी उच्च, करीब 470 डिग्री सेल्सियस है, लेकिन इसके परिमंडल में अधिक ऊंचाई पर जाने पर यह तापमान तेजी से गिरता है तथा बादल शीर्षों (70 किलोमीटर) के पास पहुंचने पर इसका मान मात्र -20 डिग्री सेल्सियस जितना न्यूनतम रह जाता है। शुक्र एक ऐसा ग्रह है जिसका अंतरिक्ष यानों द्वारा गहन अध्ययन किया गया है तथा 21 के करीब अंतरिक्ष यान या तो इस पर उतरे हैं या इसके पास से गुजरते हुए उन्होंने इसके अवलोकन किए हैं। अगले अध्याय में शुक्र की सतह तथा उसकी आंतरिक संरचना के बारे में अब तक हमारी जो समझ विकसित हुई है, उसका संक्षिप्त विवरण हम प्रस्तुत करेंगे।

## अध्याय : चार

# शुक्र की सतह और उसकी आंतरिक संरचना

आकार और संहति की दृष्टि से पृथ्वी और शुक्र दोनों में बड़ी समानताएँ हैं। दोनों की उत्पत्ति भी सौर नीहारिका के समरूपप्राय (सूर्य से तुलनात्मक रूप से एक—सी ही दूरी पर स्थित) क्षेत्रों में ही हुआ था। अतः दोनों के संघटनों में समानता की अपेक्षा की जानी चाहिए। मिलते-जुलते विकास प्रक्रमों द्वारा ही दोनों के गुजरने के कारण उनकी आंतरिक संरचनाओं में भी समानता की अपेक्षा की जानी चाहिए। लेकिन पिछले अध्याय में हमने पाया था कि दोनों ग्रहों के एक दूसरे से एकदम भिन्न परिमंडल हैं तथा इस बात का संगत कारण हमने दिया था कि इनके परिमंडलों का इतना भिन्न विकास क्यों हुआ। जहां तक आंतरिक संरचनाओं की बात है, अंतरिक्ष यानों द्वारा लिए गए प्रेक्षण हाथोंहाथ उपयोगी नहीं हो सकते। लेकिन इनकी सतहों पर आज जो अभिलक्षण (जैसे पर्वत, ज्वालामुखियों, घाटियों, खंडहरों आदि) हमें दृष्टिगोचर होते हैं उस आधार पर कुछ अनुमान तो लगाए ही जा सकते हैं। ये इस बात के द्योतक हैं कि अतीत में ग्रह किन आंतरिक प्रक्रमों से होकर गुजरा था। इस संबंध में एक महत्वपूर्ण बिंदु जिसे हमें दृष्टिपथ में रखना चाहिए वह यह कि दोनों ग्रह (पृथ्वी और शुक्र) अतीत में किसी “विभेदन” प्रक्रिया से होकर गुजरे होंगे। “विभेदन” से तात्पर्य यह है कि उच्च घनत्व वाले पदार्थ जैसे आयरन और निकेल उनके क्रोड क्षेत्रों की ओर अभिगमन कर गए होंगे जिससे ऊपर प्रावर (मैटल) में हल्के सिलिकेट पदार्थ ही रह गए होंगे। पृथ्वी का औसत घनत्व 5.5 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर जबकि शुक्र का 5.2 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है। दोनों ही ग्रहों के पृष्ठीय पदार्थ सिलिकेट निर्मित हैं जिसका घनत्व 3 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है। [शुक्र के सतह का मुआयना तत्कालीन सोवियत संघ के वेनेरा अंतरिक्ष यानों द्वारा किया गया है।] अतः यह स्पष्ट है कि दोनों ही ग्रहों में क्रोड का उच्च घनत्व होना चाहिए।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना के बारे में "सिस्मिक साउंडिंग" यानी भूकंप के दौरान उत्पन्न तरंगों के संचरण के अध्ययन द्वारा हम जानते हैं कि पृथ्वीय तरंगों को छोड़कर दो अन्य प्रकार की भूकंपी तरंगें भी होती हैं जिन्हें "एस" तथा "पी" तरंगों की संज्ञा दी जाती है। पी तरंगें संपीड़न काय तरंगें हैं तथा ये अनुदैर्घ्य होती हैं। एस तरंगें विरुपण तरंगें यानी अपरुपण तरंगें हैं। दोनों ही तरंगों का संचरण वेग माध्यम के घनत्व पर आश्रित होता है तथा परिसीमा, जहां घनत्व में तीक्ष्ण परिवर्तन होता है, द्वारा उनका प्रबल परावर्तन होता है। एस तरंगें द्रव माध्यम से होकर संचरित नहीं हो सकती। भूकंप के दौरान उत्पन्न पी तथा एस तरंगों के संचरण के आधार पर हम यह जानते हैं कि पृथ्वी के अंदर 300 किलोमीटर की गहराई में घनत्व में अचानक फेर-बदल होता है। सतह के नीचे के क्षेत्र को प्रावर (मैटल) कहते हैं। 3000 किलोमीटर की गहराई पर एक तरल क्षेत्र से हमारा वास्ता पड़ता है। केंद्र के चारों ओर 1200 किलोमीटर के अर्द्धव्यास में एक ठोस क्रोड होता है जिसका घनत्व 10 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है तथा यह आयरन, निकेल एवं उनके सलफेटों द्वारा निर्मित होता है। लेकिन शुक्र ग्रह के लिए हमारे पास भूकंपी आंकड़े नहीं हैं; अतः इसकी आंतरिक संरचना के बारे में अप्रत्यक्ष रूप से ही हमें अनुमान लगाना होगा। अंतरिक्ष यानों से लिए गए प्रेक्षणों से पता चला है कि शुक्र का कोई चुंबकीय क्षेत्र नहीं होता, लेकिन केंद्र की ओर तरल क्षेत्र के अस्तित्व की संभावना से इंकार भी नहीं किया जा सकता। पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र क्रोड के बाहर की ओर स्थित तरल क्षेत्र में उत्पन्न धाराओं के कारण ही होता है तथा ये धाराएं पृथ्वी की घूर्णन गति से ही उत्पन्न होती हैं। शुक्र पर चुंबकीय क्षेत्र की नामौजूदगी इसकी अत्यंत धीमी घूर्णन गति के कारण भी हो सकती है।

एक पहलू ऐसा है जिसे देखकर लगता है कि शुक्र और पृथ्वी दोनों भिन्न विकास प्रक्रमों से होकर गुजरे हैं। पृथ्वी पर महाद्वीपों का वर्तमान स्वरूप "प्लेट विवर्तनिकी" के कारण ही है। धरातल के नीचे 300 किलोमीटर के क्षेत्र को "दुर्बलता मंडल" (एस्थिनोस्पियर) की संज्ञा दी जाती है और यह एस्थिनोस्पियर 150 किलोमीटर की गहराई में कहीं-कहीं पर अर्द्ध-गलित अवस्था में होता है। यह सिलिकेटों के कारण

ही है जो 1000 डिग्री सेल्सियस के उच्च तापमान पर होते हैं। मध्य प्रशांत तथा मध्य अटलांटिक महासागरों में सिलिकेट की ये गलित चट्ठानें एस्थिनोस्पियर की गहराइयों से छिटक कर मध्य महासागरीय रिजों पर जाकर गिरती हैं। महासागर के बेस पर पहुंचकर ये गलित सिलिकेट ठोस रूप में आ जाते हैं तथा महासागर बेसिन पर एक नए पृष्ठ-पटल (क्रस्ट) का सृजन करते हैं। यह नवनिर्मित चट्ठान पुरानी चट्ठान को धकेलती है और संवाहक पट्टिका (बेल्ट) पर घूमते पदार्थ की तरह ये तब अद्वृतरल गहरे दुर्बलता मंडल में तैरती हैं। जब पुराने महाद्विषीय प्लेट की कोर (मार्जिन) के साथ यह गतिशील प्लेट जाकर मिलती है तो दबाव पड़ने के कारण यह नीचे की तरफ धकेली जाकर पुनः गलित अवस्था में आ जाती है। इस तरह ऊपरी प्रावर पदार्थ द्वारा निर्मित पृष्ठ-पटलीय (क्रस्टल) पदार्थ का परिसंचरण जारी रहता है। (महासागरीय प्लेट की कोर के पास) जहां यह “निमज्जन” (सबडक्शन) की घटना घटित होती है वहां कुछ बड़ी गहरी महासागरीय खाइयों का वजूद देखने को मिलता है। यहाँ पर सर्वाधिक ज्वालामुखी सक्रियता वाले क्षेत्र भी पाए जाते हैं; जैसे कि प्रशांत महासागर में स्थित “रिंग ऑफ़ फायर” (जापान, इंडोनेशिया, न्यूगिनी, फिलीपींस तथा पश्चिम अमेरिकी तट पर स्थित एंडीज और रॉकी पर्वतों से बनने वाला “रिंग”)। प्लेट विवर्तनिकी कहलाने वाली यह प्रक्रिया करोड़ों वर्षों से धरातल को “गढ़ने-संवारने” के लिए जिम्मेदार रही है। जिन कारणों से यह समस्त प्रक्रिया क्रियाशील होती है, वे हैं :

- (i) पृथ्वी की आंतरिक ऊष्मा, तथा
- (ii) महासागरीय जलराशि का स्नेहक (लुब्रिकेटिंग) प्रभाव जो (गतिशील प्लेट के) उबरने और निमज्जन की प्रक्रियाओं को संभव बनाता है।

शुक्र पर रेडियोधर्मी पदार्थों के क्षय के कारण उत्पन्न आंतरिक ऊष्मा का स्रोत परिमाण में पृथ्वी जैसा ही होना चाहिए। भूवैज्ञानिक दृष्टि से भी शुक्र की सतह बहुत पुरानी न होकर नई-नवेली ही है (भूवैज्ञानिक रूप से प्रचीन सतहों पर उल्का पड़ों की बौछारों के कारण बने गङ्गों के चित्र पाए जाते हैं जैसा कि बुध व चंद्रमा की सतहों पर तथा कुछ हद तक

मंगल तल के कुछ हिस्सों पर भी दृष्टिगोचर होते हैं)। लेकिन पृष्ठीय अभिलक्षणों के आधार पर शुक्र पर प्लेट विवर्तनिक प्रक्रिया के क्रियाशील रहने के कोई भी संकेत नहीं प्राप्त होते हैं। इस प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले महासागरों के अभाव के कारण ऐसा हो सकता है। किसी अन्य क्रियाविधि जैसे गहन ज्वालामुखी प्रक्रियाओं द्वारा भी शुक्र की आंतरिक ऊष्मा का छास होता होगा, हालांकि वर्तमान कालावधि में शुक्र पर कोई भी सक्रिय ज्वालामुखी नहीं देखने को मिलते हैं। शुक्र का उच्च सतह-तापमान भी (इस छास का) अपने आप में एक कारण हो सकता है। शुक्र के पृष्ठीय अभिलक्षणों का गहन मानचित्रण नासा के मैगलन नामक आर्बिटर यान, जिसे शुक्र की कक्षा में 1990 में छोड़ा गया था, में रखे सिंथेटिक अपरचर रेडार द्वारा किया गया। यह यान एक दीर्घवृत्तीय कक्षा में शुक्र ग्रह का चक्कर काट रहा था। जब शुक्र के निकट, उससे 300 किलोलीटर की दूरी पर यह यान आया तो इसमें लगे रेडार ने शुक्र की ओर उमुख होकर 12.6 सेंटीमीटर तरंगदैर्घ्य पर उसकी सतह का मानचित्रण किया, जिसकी पृष्ठीय सुग्राहिता 120 मीटर  $\times$  120 मीटर थी। जब यह यान आगे बढ़ा तो पृथ्वी की तरफ घूमते हुए रेडार ने इकट्ठा किए गए आंकड़ों को उस तक संप्रेषित किया। हालांकि शुरू में कुछ काल के लिए यान को लेकर कुछ चिंता भरे क्षण जरुर आए थे लेकिन बाद में यह सुचारू ढंग से कार्य करने लगा था तथा काफी लंबे समय तक क्रियाशील रहते हुए इसने शुक्र के 80 प्रतिशत सतह के मानचित्रण का कार्य पूरा किया।

कुछ विशाल ज्वालामुखियों (उदाहरण के लिए रिया मांस और थिया मांस जिनकी ऊँचाई 4 किलोमीटर है) के अलावा छोटे-छोटे सैकड़ों शंकुनुमा शिखरों की मौजूदगी अतीत में शुक्र पर होने वाली गहन व शक्तिशाली ज्वालामुखीय सक्रियता की ओर संकेत करती है। शुक्र पर अनेक घाटियां भी देखने को मिलती हैं; रिया मांस और थियो मांस को जोड़ने वाली एक घाटी तो 3000 किलोमीटर लंबी है। इसके अलावा शुक्र पर एक असामान्य किस्म की विगत ज्वालामुखीय गतिविधि भी दिखाई पड़ती है जो सौर जगत के किसी अन्य पिंड में नहीं देखने को मिलती है। ये एक किस्म के चपटे ज्वालामुखी हैं जो ऊँचाई में करीब एक

किलोमीटर मात्र हैं लेकिन जो 20-25 किलोमीटर के व्यास में फैले हुए हैं और जिनसे "टूथपेस्ट" सदृश लावा निकल कर बहता है। इन्हें "पैनकेक" (दोसाकृति) ज्वालामुखी कहते हैं। मैगलन अंतरिक्ष यान द्वारा एक असाधारण दृश्य के रूप में शुक्र पर "लावा की नदियां" देखने को मिलीं। ये प्रवाह चित्र हैं जो पृथ्वी पर वेगवान नदियों द्वारा निर्मित खड़ों, विसर्प (मिएंडर) तथा डेल्टा से बहुत समानता रखते हैं तथा जिनका सृजन बहुत ही तरल किस्म के असामान्य लावा द्वारा ही होना चाहिए। इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त पात्र "कार्बोनेटाइट" को ही माना जाना चाहिए जो कुछ करोड़ साल पहले शुक्र के उच्च सतह-तापमान के चलते संभवतया कार्बोनेट चट्टानों (गलनांक 500 डिग्री सेल्सियस) के गलने के कारण ही बना होगा। इस तरह के लावा प्रवाह के साथ संबद्ध बाल्टिस वैली नामक एक घाटी है जो 6500 किलोमीटर लंबी है। [साधारण लावा में बहुलकित (पालिमराइज्ड) सिलिकन डाइ-आक्साइड की शृंखलाओं के कारण बहुत अधिक तरलता नहीं होती; लेकिन कार्बोनेटाइट गलने पर पानी जैसा हो जाता है]।

ऊँचे ज्वालामुखीय पर्वतों के अलावा शुक्र पर पृथ्वी की तरह ही पृष्ठ-पटलीय दबाव द्वारा उत्पन्न "वलित पर्वत" (फोल्ड माउंटेन) भी हैं। अतः विवर्तनिक दृष्टि से शुक्र सक्रिय है (लेकिन इसमें प्लेट विवर्तनिक प्रक्रिया नहीं होती)। शुक्र पर "मैक्सवेल मांट" नामक एक वलित पर्वत की ऊँचाई 11 किलोमीटर है। शुक्र का एक और विशेष लक्षण इसमें "टेसेरा" (टाइलों के लिए प्रयुक्त होने वाला ग्रीक शब्द) का पाया जाना है। टेसेरा क्षेत्र कुछेक हजार वर्ग किलोमीटर में फैले हुए हैं तथा ये 20 किलोमीटर आकार की चट्टानों से "ढके" दिखाई देते हैं।

अतः मैगलन की "रेडियो" आंख की मदद से शुक्र के सतह की काफी बारीकियां उद्घाटित हुई हैं जो शुक्र के बादलों के घने परतों की ओट में रहने के कारण प्रकाशीय पारिसर में हमसे छिपी रहती हैं। अलबत्ता, इन पृष्ठीय अभिलक्षणों की अतीत में ग्रह द्वारा अनुभव की गई भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं, जो शायद आज भी चल रही होंगी, के रूप में विशद व्याख्या भविष्य में होने वाले शोध-अध्ययन द्वारा ही संभव हो पाएगी।

## अध्याय : पांच

### पारगमन

इस अंतिम अध्याय में अब हम जून 2004 तथा जून 2012 को अवलोकित किए जा सकने वाले सूर्य की चकती के सामने से में होने वाले पारगमन युग्मों, जिन्हें सही रूप में इस सदी की घटना (ओं) की संज्ञा दी जा सकती है, की चर्चा करेंगे। ऐसी विरल खगोलीय घटनाएं आम जनता में गहरी रुचि जागृत करती हैं तथा उनको वैज्ञानिक जानकारी देने के साथ-साथ उनके अंदर एक वैज्ञानिक भावना पैदा करने का भी एक उपयोगी उद्देश्य पूरा करती हैं। इस संदर्भ में रोचक तथ्य यह है कि करीब चार सदी पूर्व (धार्मिक सोच से प्रेरित) एक आम धारणा यह थी कि केवल पृथ्वी पर ही “घटनाएं” या “परिवर्तन” घटित होते हैं क्योंकि वह “अपूर्ण” है; पृथ्वी के ऊपर ईश्वर की दुनिया ही शाश्वत व अपरिवर्तनीय है। यह धारणा ब्रह्मांड संबंधी अरस्तू की उस अवधारणा से प्रेरित थी जिसमें पृथ्वी को उसके केंद्र पर स्थिर तथा सूर्य, चंद्रमा, ग्रहों तथा तारों के विभिन्न गोलों को उसके चारों ओर चक्कर काटते हुए माना जाता था। इस धारणा को उस समय व्याप्त धर्म का इस हद तक समर्थन प्राप्त था कि इसके अलावा कुछ सोचना “ईशा निंदा” के समकक्ष माना जाता जिसकी उचित सजा भी मिल सकती थी। धूमकेतु के आविर्भाव जैसी विरल घटनाओं का उद्भव “वायुमंडलीय” माना जाता तथा जब टाइको ब्राह्म ने 1577 को दिखाई पड़ने वाले चमकदार धूमकेतु के विभिन्न स्थलों से किए गए अवलोकनों की तुलना के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि चंद्रमा से भी अधिक दूरी पर धूमकेतु स्थित होते हैं तो इससे (लोगों को) एक गहरा झटका लगा था! तकरीबन उसी समय (1572) आकाश में एक नए तारे के दिखाई देने की असाधारण घटना घटी थी जिसने यह उद्घाटित किया कि पृथ्वी के ऊपर के ब्रह्मांडीय भाग में भी परिवर्तन होते हैं। इस घटना, जिसका अध्ययन भी टाइको

ब्राह्म द्वारा किया गया था, को अब टाइको के अधिनवतारे (एक अति भयंकर तारक विस्फोट) के नाम से जाना जाता है। उन दिनों यूरोप की विचारधारा को मोड़ने तथा उसे “हठधर्मी” से “तर्कसंगत” दिशा में ले जाने में ऐसी घटनाओं की बड़ी जोरदार भूमिका थी। आजकल ऐसी घटनाएं “विज्ञान में जनशिक्षा” के लिए अवसर प्रदान करती हैं। ऐसी घटनाओं में ग्रहण (किसी स्थान विशेष के लिए अमूमन दो, हालांकि पूर्ण सूर्य ग्रहण देख पाना जीवन भर का अवसर माना जाता है), एक दशक में औसतन एक बार किसी चमकदार धूमकेतु का आविर्भाव, शनि के वलयों की पंद्रह वर्षों के अंतराल से विलुप्ति (अगली बार 2101 में ऐसा होगा), मंगल की आवर्ती रूप से घटित होने वाली अनुकूल युतियां (पिछली ऐसी घटना सितंबर 2003 में घटी थी), अंतर्ग्रहों बुध और शुक्र के पारगमन जिनमें शुक्र के पारगमन असाधारण रूप से विरल हैं, आदि शामिल हैं। ये सभी घटनाएं विज्ञान में केवल “सतही” रुचि रखने वाले आम लोगों की जिज्ञासा को जागृत करने में मदद करती हैं।

अंतर्ग्रहों बुध और शुक्र के “पारगमनों” की चर्चा पर वापस लौटते हुए हम पाते हैं कि बुध के पारगमन काफी जल्दी-जल्दी (एक सदी में करीब चौदह बार) घटित होते हैं जबकि शुक्र के पारगमन काफी विरल होते हैं और एक पीढ़ी के बाद तीसरी पीढ़ी को ही जाकर इसे अवलोकित करने का सौभाग्य मिल पाता है। ये “युगमों” में आठ वर्ष के अंतराल से घटित होते हैं; लेकिन इन युगमों के बीच में भी एकांतर क्रम से  $113\frac{1}{2}$  तथा  $129\frac{1}{2}$  वर्षों का अंतर रहता है (इस नियमितता के कारणों की चर्चा इसी अध्याय में बाद की जाएगी)। हालांकि किसी अंतर्ग्रह के पारगमन की घटना काफी कुछ सूर्यग्रहण (चंद्र पारगमन) से मिलती-जुलती ही है लेकिन जहां सूर्य ग्रहण की घटनाओं को पिछले कई हजारों वर्षों से दर्ज किया जाता रहा है, किसी अंतर्ग्रह (बुध) के प्रथम पारगमन की घटना  $1631$  में जाकर ही अवलोकित की गई थी तथा आज तक शुक्र के केवल पांच पारगमन की घटनाएं ( $1639, 1761, 1769, 1874$  तथा  $1882$ ) ही दर्ज की गई हैं। लेकिन आखिर ऐसा क्यों है? पारगमन के दौरान बुध की चकती का कोणीय आकार केवल  $10$  चाप सेकेंड जबकि शुक्र का  $1$  चाप सेकेंड होता है। नतीजतन इस आकार का

“काला बिंदु” कोरी आंखों से सूर्य की चकती पर असानी से अवलोकित नहीं किया जा सकता है। अतः किसी भी ग्रह के पारगमन को अवलोकित करने के लिए एक तो दूरबीन तथा दूसरे घटना के घटित होने की सही भविष्यवाणी इन दोनों की ही आवश्यकता होती है।

दूरबीन का आविष्कार हैंस लिपरशी नामक एक हालैडनिवासी चश्मेनिर्माता द्वारा 1608 में किया गया था। खगोलीय अवलोकनों में इसका पहले-पहल इस्तेमाल गैलीलियो द्वारा 1609 में किया गया। इसी की मदद से उन्होंने बृहस्पति के उपग्रहों (जिन्हें अब इसके चार गैलीलियन सैटेलाइटों की संज्ञा दी जाती है) को देखा। इससे सूर्यकेंद्रित सौर जगत के अस्तित्व पर उनकी सहमति की मोहर लगी। बेशक, सूर्यकेंद्रित प्रणाली पर अपनी इस सहमति की घोषणा से उन्हें रोमन चर्च का कोपभाजन बनना पड़ा था जो अब एक चिर-परिचित इतिहास का हिस्सा बन चुका है (हाल ही में चर्च द्वारा सार्वजनिक रूप से यह घोषणा की गई कि गैलीलियो को दिया जाने वाला दंड चर्च की “भूल” थी)।

ग्रहीय स्थितियों का सटीक पुर्वानुमान सत्रहवीं सदी के आरंभ में जोहानेस केपलर द्वारा ग्रहीय कक्षाओं सम्बन्धी दिए गए तीन नियमों द्वारा ही किया जाना संभव हो पाया। अपने प्रसिद्ध ग्रहीय कक्षाओं के नियमों के आधार पर केपलर ने ग्रहों की भविष्य की स्थितियों को पुर्वानुमानित करने वाली सारणियों का प्रकाशन किया। इन सारणियों को प्रेग के राजा रुडोल्फ, जिनके सहयोग से ही केपलर ने अपना कार्य अंजाम दिया था, के सम्मान में “रुडोल्फिन सारणियों” का नाम दिया गया था। सन् 1672 में प्रकाशित होने वाली इन सारणियों ने शुक्र (दिसंबर 1631) तथा बुध (नवंबर 1631) के होने वाले पारगमनों की तिथियों का पहले-पहल पुर्वानुमान प्रस्तुत किया था। शुक्र के पारगमन को बादलों की मौजूदगी के कारण अवलोकित कर पाना संभव नहीं हो पाया था लेकिन बुध के पारगमन को गैसोंडी नामक खगोलविद द्वारा 7 नवम्बर 1631 को बाकायदा अवलोकित किया गया था। इस पारगमन की असली तिथि के बारे में पूरा यकीन न होने के कारण गैसोंडी ने लगातार तीन दिनों तक इसे अवलोकित किया था और इस कार्य में सफलता ने उसके चरण चूमें थे। इस तरह नवम्बर 1631 में घटित

होने वाला बुध का पारगमन खगोल विज्ञान के इतिहास में किसी भी अंतर्ग्रह के प्रथम पारगमन की भविष्यवाणी और उसके अवलोकन का पहले-पहल उदाहरण बना।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, शुक्र के पारगमन युग्म आठ वर्ष के अंतराल से घटित होते हैं और अगला पारगमन (1631 के बाद) दिसंबर 1639 को घटित होने वाला था। लेकिन उन दिनों आठ वर्ष के पारगमन युग्मों के बारे में जानकारी नहीं थी तथा रुडोल्फिन सारणियों में भी हल्की-सी त्रुटि थी। अतः 1639 के पारगमन की भविष्यवाणी सारणियों द्वारा नहीं की जा सकी। जेरेमिया होरोक्स नामक एक गणितज्ञ ने ग्रहीय स्थितियों के लिए एक परिशुद्ध “लैंसबर्गर सारणी” का प्रयोग कर रुडोल्फिन सारणियों में गलतियों का पता लगाया। उसके द्वारा संशोधित शुक्र ग्रह की स्थितियों ने 4 दिसंबर 1639 को पारगमन के घटित होने की भविष्यवाणी की; इस घटना को होरोक्स तथा स्वतंत्र रूप से उसके सहकर्मी क्रैबट्री द्वारा बाकायदा अवलोकित किया गया था। लेकिन उनके द्वारा लिए गए अवलोकनों की विशद चर्चा से पूर्व आइए निकोलस कोपर्निकस, टाइको ब्राह्म तथा जोहानेस केप्लर यानी वे तीन खगोलविद जिन्होंने ग्रहीय कक्षाओं संबंधी हमारी जानकारी की आधारशिला रखी के जीवन के बारे में थोड़ी जानकारी हासिल कर ली जाए।

निकोलस कोपर्निकस (जिनका उल्लेख प्रथम अध्याय में आया था) का जन्म 1473 में तोरुन (पोलैंड) में एक धनाद्य व्यापारी परिवार में हुआ था। उनके पिता की जब मृत्यु हुई थी तब वह बहुत छोटे थे। उनके पालन पोषण का जिम्मा उनके चाचा, जो बिशप ऑफ एर्मलैंड थे, ने उठाया था। उन्होंने कानून की पढ़ाई की और हालांकि खगोल विज्ञान में उनकी रुचि थी, लेकिन 1530 तक वह विभिन्न प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का ही भार संभालते रहे। लगभग उसी समय सूर्यकेंद्रित ब्रह्मांड संबंधी अपनी अवधारणा को लेकर उन्होंने एक आलेख प्रकाशित करवाया जो अपेक्षाकृत कम ही लोगों तक पहुँचा। लेकिन इसके बावजूद इस आलेख ने 1533 में तत्कालीन क्लीमेंट के पोप का ध्यान आकर्षित किया। उनसे इसका जवाब तलब किया गया (उनके इस आरंभिक आलेख का

अंग्रेजी अनुवाद प्रोसिडिंग्स ऑफ अमेरिकन फिलासाफिकल सोसाइटी ११७ (६) (१९७३), ४२३ में छपा था}। अतः संभवतया स्थापित चर्च के कोप-भाजन बनने के डर से उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति “रेवोल्यूशनिबस..... (“आन द रेवोल्यूशंस ऑफ द हेवेनली बॉडीज”) का प्रकाशन अपनी मृत्यु-ईया पर पहुंचने तक स्थगित रखा। बहरहाल, सटीक ग्रहीय स्थितियों का पूर्वानुमान लगाने में कोपर्निकी प्रणाली टालेमी प्रणाली की तुलना में कोई बहुत अधिक कामयाब नहीं थी।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, केपलर ने ही ग्रहीय कक्षाओं के लिए सटीक समीकरणों की खोज की थी, लेकिन इन ग्रहीय समीकरणों का संरूपण टाइको द्वारा लंबे काल तक लिए गए परिशुद्ध ग्रहीय स्थिति संबंधी मापनों पर ही आधारित था। कोरी आंखों से अवलोकन करने वाले खगोलविदों में सबसे अंतिम खगोलविद होने का श्रेय टाइको को हासिल है। खगोल विज्ञान में (ग्रहीय) स्थिति संबंधी अपने परिशुद्ध मापनों के लिए उन्होंने काफी ख्याति अर्जित की थी तथा इस उद्देश्य पूर्ति के लिए उन्होंने स्वयं कई युक्तियों का निर्माण भी किया था। उनका जन्म १५४६ में स्वीडन के एक सामंत परिवार में हुआ था तथा उनके धनवान चाचा ने बहुत छोटी उम्र में ही उन्हें गोद ले लिया था ताकि यूरोप के तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं में टाइको की अच्छी शिक्षा-दीक्षा हो सके (उनके विद्यार्थी जीवन का एक रोचक प्रसंग उनके द्वारा अपने एक साथी विद्यार्थी, जो खुद भी सामंत परिवार से था, के साथ हुए इस विवाद कि “दोनों में से गणित में कौन अधिक धुरंधर है” के परिणामस्वरूप लड़े जाने वाले एक द्वंद्ययुद्ध से जुड़ा है। इस द्वंद्ययुद्ध के कारण उन्हें अपने नाक के अग्रभाग (टिप) से हाथ धोना पड़ा था तथा सोने-चाँदी की मिश्रधातु से बनी कृत्रिम नाक के साथ ही उन्हें अपना शेष जीवन बिताना पड़ा था। खगोल विज्ञान में उनकी रुचि चौदह वर्ष की आयु में ही जागृत हो गई थी जब एक पूर्ण सूर्य ग्रहण का उन्होंने अवलोकन किया था। इसके बाद ‘उन्नतांशमापी’ (एस्ट्रोलेब) नामक एक युक्ति को हासिल कर उन्होंने अपने अवलोकन लेने आरंभ किए। जब वह सत्रह वर्ष के थे तो १५७२ का प्रसिद्ध अधिनवतारा विस्फोट (जिसे अब टाइको के अधिनवतारे का नाम दिया जाता है) हुआ। टाइको ने इस अधिनवतारे

द्वारा उत्सर्जित प्रकाश के दिन—प्रतिदिन होने वाले परिवर्तनों के सिलसिलेवार प्रेक्षण लिए और इस तरह यूरोप में एक खगोलविद के रूप में उनके नाम की धूम मच गई (प्रसंगवश यहां हम उल्लेख करना चाहेंगे कि इससे पूर्व एक और स्पष्ट रूप से दर्ज अधिनवतारा विस्फोट 1054 में “तुला” तारा—मंडल में हुआ था। उस अधिनवतारे, जिसे अवशिष्ट नीहारिका के आकार के आधार पर “कर्कट” अधिनवतारे की संज्ञा दी गई थी, को चीनी, जापानी तथा कोरियाई इतिहासकारों द्वारा रिकार्ड किया गया था, लेकिन यूरोप में (अपवादस्वरूप) ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया। कर्कट अधिनवतारा एक टाइप II सुपरनोवा है। यह एक उच्च द्रव्यमान वाले तारे के विस्फोट से उत्पन्न होता है जो अपने केंद्रभाग में एक सुसंहत पिंड को अवशिष्ट रूप में छोड़ जाता है। यह न्यूट्रान तारा या कृष्ण विवर दोनों में से कुछ भी हो सकता है। कर्कट सुपरनोवा विस्फोट द्वारा अवशिष्ट रूप से बचा यह सुसंहत पिंड एक कर्कट स्पंदनशील तारा (पल्सार) यानी एक न्यूट्रान तारा है। टाइको का अधिनवतारा तथा उसके उपरांत होने वाले अन्य अधिनवतारा विस्फोट (केपलर का अधिनवतारा) टाइप I किस्म के सुपरनोवा के कारण ही थे। संभवतया युग्म तारक योजना में स्थित मध्यम संहति वाले तारों के विस्फोट से ही ऐसे अधिनवतारों का सृजन होता है तथा अपने केंद्र भाग में ये किसी सुसंहत पिंड को अवशिष्ट रूप में नहीं छोड़ते हैं।)

उनकी बढ़ती ख्याति को देखते हुए डेनमार्क के तत्कालीन राजा फ्रेडरिक द्वितीय ने एक खगोलीय वेधशाला की स्थापना के लिए कोपेनहेगन के पास स्थित हेलन नामक द्वीप उनके सुपुर्द कर दिया तथा इस कार्य के लिए उनकी भरपूर (आर्थिक) सहायता भी की। इस तरह टाइको ने “यूरानीबोर्ग वेधशाला” की स्थापना की। यहां उन्होंने काफी लंबे अर्से तक कार्य किया तथा इस वेधशाला को अपने द्वारा विकसित उच्च गुणवत्ता वाले एस्ट्रोलेब जैसी अनेक परिष्कृत युक्तियों से सुसज्जित भी किया। पर सन् 1588 में सम्राट फ्रेडरिक के निधन के बाद टाइको को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। नया सम्राट बेरोकटोक मदद देने के लिए राजी नहीं था। इस दौरान एक खगोलविद के रूप में टाइको की ख्याति समग्र यूरोप में फैल गई थी।

इसे देखते हुए प्रेग के सम्राट रुडोल्फ ने अपने प्रमुख गणितज्ञ का खिताब देने के साथ—साथ प्रेग के निकट बोनाटेक में एक वैद्यशाला स्थापित करने हेतु आर्थिक अनुदान देने की पेशकश भी उनके सामने रखी। इसे स्वीकारते हुए यूरानीबोर्ग से अपने तमाम खगोलीय यंत्रोपकरणों को समेटते हुए टाइको बेनाटेक चले आए। यहाँ बेनाटेक में ही 1597 में उस समय के अपेक्षाकृत कम चर्चित 'केपलर' नाम के गणितज्ञ ने टाइको से संपर्क स्थापित किया था।

केपलर का जन्म 1571 में एक अति साधारण परिवार में जर्मनी के एक छोटे—से कस्बे वेल—डर—स्टैट में हुआ था। चार साल की नाजुक उम्र में ही चेचक निकल आने से उनकी नेत्रज्योति क्षीण हो गई थी। लेकिन उनके लिए एक सौभाग्य की बात यह थी कि जिस स्थानीय सामंत के अधिकार में वह प्रांत था वह एक मानवताप्रेमी तथा गरीब प्रतिभावान बच्चों की शिक्षा—दीक्षा में मदद किया करता था। अपनी प्रतिभा का परिचय केपलर ने बचपन में ही दे दिया था, फलस्वरूप विश्वविद्यालय स्तर तक अच्छी शिक्षा हासिल करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। धर्म—शिक्षा को ही अपना कैरियर बनाना ही शायद उनकी नियति में था लेकिन ट्यूबिनगन विश्वविद्यालय में पढ़ते समय एक छोटी—सी घटना ने उनके जीवन की दिशा ही बदल दी। विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित एक सार्वजनिक वाद—विवाद प्रतियोगिता में केपलर ने कोपर्निकस के सूर्यकेंद्रित जगत मॉडल का जोरदार समर्थन किया। लेकिन किसी "भावी पादरी" के लिए इस तरह की विचारधारा का रखना संभवतया विश्वविद्यालय के अधिकारियों को अनुपयुक्त लगा। यह केपलर का सौभाग्य था कि उन्हीं दिनों पास ही के ग्रेज नामक एक नगर में गणित के किसी स्कूली अध्यापक की मृत्यु हो गई थी। ऐसे में उस स्कूल के अधिकारियों ने एक उपयुक्त उम्मीदवार की आस में ट्यूबिन्यन विश्वविद्यालय से संपर्क किया। गणित में केपलर की महारथ और उनके रुझान (तथा कोपर्निकस जगत योजना पर किसी पादरी के लिए अनुपयुक्त उनके विचारों) को देखते हुए विश्वविद्यालय अधिकारियों ने उनके नाम की संस्तुति कर दी हालांकि उस पद के लिए जरूरी योग्यता पर वह पूरी तरह से खरे भी नहीं उत्तरते थे। इस तरह केपलर ने गणित शिक्षण का

श्रीगणेश किया; और इन्हीं दिनों उन्होंने ग्रहीय कक्षाओं पर कार्य करना भी शुरू किया। अलबत्ता, उनकी आरंभिक धारणाएं “प्रकृति में मौजूद साम्यता” तथा “कक्षाओं की ज्यामितीय पूर्णताओं” के उनके विश्वास पर ही अधिक आधारित थीं; तथा अपने मॉडल के साथ वास्तविक ग्रहीय गतियों का तालमेल बिठाने के लिए उन्हें सटीक ग्रहीय स्थितियों की आवश्यकता थी जिसके लिए टाइको की अपार ख्याति थी तथा जिनके पास लंबे काल तक की परिशुद्ध सारणियां थीं। उन्हें हासिल करने के लिए टाइको को लिखते हुए केपलर ने अपने द्वारा लिखित एक पुस्तक भी साथ ही में भिजवा दी। गणित में धुरंधर एक सहायक की केपलर को जरूरत थी, इसलिए उन्होंने केपलर को नौकरी पर रखने की पेशकश की। टाइको के प्रेक्षणात्मक रिकार्डों को हासिल करने का केपलर को इसमें एक अवसर दिखाई दिया और इसलिए उन्होंने 1597 में इस नौकरी के लिए हां कर दी। अलबत्ता, टाइको चाहते थे कि केपलर केवल गणित में उनके सहायक के रूप में ही कार्य करते रहे; अपने रिकार्डों को उनके हवाले करना उन्हें किसी तरह भी गवारा नहीं था। अतः इस बात को लेकर दोनों के संबंधों में तनाव आ गया। शारीरिक रूप से भी दोनों के बीच जमीन-आसमान का अंतर था। टाइको हष्ट-पुष्ट शरीर के मालिक तथा अच्छा भोजन करने के शौकीन थे, जबकि केपलर बस दुबली-पतली काया के ही थे। टाइको “सामंत” घराने से थे तथा जगत योजना (वर्ल्ड सिस्टम) के बारे में उनकी अपनी विचारधारा थी जिसके अनुसार पृथ्वी केंद्र में स्थित है तथा जिसके चारों ओर सूर्य चक्कर काटता है तथा (उस समय तक ज्ञात) पांच ग्रह-बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि सूर्य के चारों ओर का परिक्रमण करते हैं। इसके विपरीत बुर का कोपर्निकी मॉडल में दृढ़ विश्वास था। ऐसी हालत में टाइको के प्रेक्षणों के रिकार्ड वाली ‘लॉग बुक’ को हासिल करना सचमुच टेढ़ी खीर थी। निराश होकर केपलर ग्रेज वापस लौट आए। लेकिन इस दौरान ग्रेज की परिस्थितियां भी बदल चुकी थीं। उस प्रात के नए सामंत प्रभारी को चर्च द्वारा समर्थित भूकेंद्रिक जगत मॉडल के सिद्धांत पर गहरा विश्वास था तथा कोपर्निकी विचारधारा उसे एकदम से असहनीय थी। यह देखते हुए केपलर फिर टाइको के पास वापस लौट आए।

टाइको ने इस आश्वासन के साथ उन्हें स्वीकार किया कि वह केवल उनका सहायक बनकर ही रहेंगे।

अलबत्ता भाग्य एक बार फिर केपलर पर मुस्कुराया जब 1601 में असामान्य परिस्थितियों में टाइको की मृत्यु हुई (ऐसा कहा जाता है कि स्थानीय सामंत द्वारा मेजबानी की गई एक पार्टी में शारीक हुए मेहमानों को मूत्र त्याग के लिए न जाने देने की लापरवाही मेजबान द्वारा हुई थी क्योंकि मेजबान के उठने से पहले किसी मेहमान के उठने को "शिष्टाचार विरुद्ध" माना जाता था। नतीजतन गुर्दे के काम करना बंद कर देने से टाइको की मृत्यु हो गई)। टाइको की प्रेक्षणों की 'लॉग बुक' को हासिल करने के जिस मकसद से केपलर टाइको से जुड़ा था उसे कार्यरूप देने में उन्होंने कोई देर नहीं लगाई। और इस तरह केपलर का उद्देश्य पूर्ण हुआ।

प्रेक्षणात्मक रिकार्डों को हासिल करने के बाद ग्रहीय कक्षाओं के स्वरूप को ज्ञात करने में केपलर ने कोई समय नहीं गंवाया; और इस तरह 1609 तक पहले दो नियम व्युत्पन्न करने में उन्हें सफलता मिली। पर तीसरे नियम को व्युत्पन्न करने में उन्हें नौ वर्ष और लग गए। पहले नियम के अनुसार सूर्य के इर्द-गिर्द ग्रह दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में चक्कर काटते हैं तथा (इस दीर्घवृत्त के) एक फोकस पर सूर्य स्थित होता है। दूसरा नियम यह व्यक्त करता है कि इस (ग्रहीय) गति के दौरान सूर्य के चारों ओर ग्रह का क्षेत्रीय (एरियल) वेग स्थिर रहता है; तीसरे नियम के अनुसार कक्षीय काल "p" का वर्ग अर्द्धदीर्घ अक्ष "a" के घन के समानुपाती होता है :  $a^2 \propto p^3$  [इस "तीसरे नियम" ने सूर्य-ग्रह के बीच की दूरियों के मापन के लिए एक सापेक्ष दूरी - मापक्रम (डिस्टेंस स्केल) की स्थापना को संभव बनाया। इस तरह पृथ्वी और सूर्य के बीच की परम दूरी (खगोलीय इकाई) को 1672 में मंगल वियुति की एक घटना के दौरान पृथ्वी-मंगल के बीच की दूरी के मापन द्वारा पहले-पहल ज्ञात किया जा सका]। केप्लर की गणितीय प्रतिभा इसमें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। उस समय तक (टालेसी की भूकेंद्रिक तथा कोपर्निकस की सूर्यकेंद्रिक दोनों प्रणालियों में ही) ग्रहों को अनिवार्यतया वृत्तीय कक्षाओं में ही चक्कर काटते हुए माना जाता था। इन वृत्तों के केंद्र केंद्रीय पिड (पृथ्वी या सूर्य) से तानिक हटकर लिए जाते थे तथा प्रेक्षित ग्रहीय स्थितियों से तालमेल बिठाने के लिए ग्रहों के वास्तविक पथ (डेफरेंट कहलाने वाले)

इन वृत्तीय कक्षाओं पर केंद्रित “अधिचक्रों” पर स्थित माने जाते थे [भारतीय खगोलीय पद्धतियों के “सिद्धांत” भी इसी से मिलते-जुलते मॉडलों पर आधारित थे]। केपलर के नियमों को न्यूटन के गुरुत्वीय नियमों से व्युत्पन्न अवश्य किया जा सकता है, लेकिन जब केपलर ने अपने नियमों का संरूपण किया था तब गुरुत्वीय नियम कहा था; उसकी खोज तो अर्द्धसदी बाद ही जाकर हो पाई थी। टाइको को इसका पूर्ण श्रेय मिलना चाहिए क्योंकि उनके परिशुद्ध प्रेक्षणीय आंकड़ों के आधार पर ही केपलर अपने नियमों को व्युत्पन्न कर पाए थे।

अपने कक्षीय नियमों के आधार पर केपलर ने ग्रहों की भविष्यगत स्थितियों के बारे में एक सारणी प्रकाशित की जिसे “रूडोल्फिन सारणी” (सप्टेम्बर 1631) के सम्मान में जिनके सहयोग से बेनाटेक वेधशाला कार्यशील भी) का नाम दिया जाता है। इन्हीं सारणियों में ही पहले-पहल बुध (नवम्बर 1631) तथा शुक्र (दिसम्बर 1631) के घटित होने वाले पारगमनों की भविष्यवाणी की गई थी। रूडोल्फिन सारणियों का प्रकाशन 1627 में हुआ और 1630 में केपलर का निधन हो गया। लेकिन बुध के पारगमन संबंधी उनकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई जब गैसोंडी नामक खगोलविद ने 7 नवंबर, 1631 को इसका अवलोकन किया। इस तरह यह पारगमन किसी अंतर्ग्रह का सूर्य की चक्री की पृष्ठभूमि में अवलोकित किया जाने वाला पहला पारगमन था। उस समय ग्रहों तक की वास्तविक दूरी ज्ञात नहीं थी, अतः पारगमन के समय उनके कोणीय व्यास के मापन में रुचि होना स्वाभाविक-सी ही बात थी; (बुध के) कोणीय व्यास को 20 चाप सेकेंडों के बराबर मापा गया (आधुनिक मान 11 चाप सेकेंड है)। शुक्र के पारगमन, जिसके दिसंबर 1631 में घटित होने की भविष्यवाणी की गई थी, को अवलोकित नहीं किया जा सका क्योंकि यूरोप के आकाश में उन दिनों बादलों का साम्राज्य था। उल्लेखनीय है कि बुध के पारगमन को गैसोंडी द्वारा तीन क्रमागत दिवसों पर अवलोकित किया गया था (उन दिनों पूर्वानुमानित ग्रहीय स्थितियों पर पर्याप्त रूप से भरोसा नहीं किया जा सकता था)।

दिसंबर 1639 में होने वाले शुक्र के अगले पारगमन के बारे में रूडोल्फिन सारणियों में कोई संकेत नहीं था। इन सारणियों के अनुसार उस अंतर्युति के दौरान शुक्र का पथ सौर चक्री के दायरे से बस थोड़ा

ही हट कर था। यह अल्प त्रुटि इस कारणवश थी कि रुडोल्फिन सारणियों में ग्रहीय स्थितियां पृथ्वी के केंद्र को मूल बिंदु (आरिजिन) मानकर दी गई थी जबकि प्रेक्षक असल में पृथ्वी की सतह पर स्थित होता है; और इस तरह तनिक लंबन या दिग्भेद (पैरेलैक्स), जो पृथ्वी के अद्व्यास के अंतर के चलते आता है, ग्रहों की प्रेक्षित स्थितियों में उनकी वास्तविक स्थितियों की तुलना में लघु अंतर उत्पन्न कर देता है। जेरेमिया होरोक्स नाम के एक ब्रिटिश गणितज्ञ ने एक बेल्जियमवासी खगोलविद द्वारा तैयार परिष्कृत लैंसबर्गर सारणियों के प्रयोग द्वारा दिसंबर 1639 में घटित होने वाले शुक्र की अंतर्युति के दौरान शुक्र के पथ की पुनर्गणना कर यह पाया कि उस अंतर्युति के दौरान ही शुक्र असल में सौर चक्री के आगे से गुजरने वाला था [शुक्र के पारगमन युगमों में आठ वर्षों के अंतराल से चालू सदी के दौरान ही घटित होते हैं। पारगमनों का पूर्ण चक्र 243 वर्षों का होता है तथा पहले के चक्रों में केवल 1396 का पारगमन ही घटित हुआ होगा। इसके बारे में अधिक जानकारी बाद में दी जाएगी जब हम आठ वर्षीय युगमों की विस्तार से चर्चा करेंगे।] होरोक्स ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से गणित और खगोल विज्ञान का अध्ययन किया था तथा वह तब एक स्कूल अध्यापक के साथ-साथ लिवरपूल के पास के एक छोटे-से नगर के मुख्य गिरजाघर के प्रभारी पादरी के रूप में भी नियुक्त था। उसकी गणनाओं के अनुसार पारगमन 4 दिसंबर को घटित होने वाला था और कैम्ब्रिज में उसके साथ पढ़ने वाले सह-विद्यार्थी विलियम क्रैबट्री को भी उसने इसे अवलोकित करने के लिए प्रेरित किया। वह रविवार का दिन था और होरोक्स को गिरजाघर में कुछ खास जिम्मेदारियों का पालन करना था। लेकिन मध्याह्न सवा तीन बजे अपनी जिम्मेदारियों को निबटा कर वह पारगमन के प्रेक्षण के लिए झटपट तैयार हुआ। वह उस समय पहुंचा जब दूसरा संपर्क होने को ही था और इस संपर्क के समय (यानी वह समय जब शुक्र सूर्य में पूर्ण रूप से निमीलित हो जाता है) को दर्ज करने में वह कामयाब रहा। उसके मित्र क्रैबट्री को बादलों के कारण कुछ अड़चनों का सामना करना पड़ा, लेकिन बीच-बीच में (बादल छंटने के कारण) पारगमन को प्रेक्षित कर पाने के कारण होरोक्स के प्रेक्षणों की पुष्टि कर पाने में वह समर्थ रहा। शुक्र के कोणीय व्यास को 1 चाप मिनट (असल मान के अति सन्निकट)

मापा गया। (शुक्र के) बहिर्गमन या निर्गमन से पहले ही सूर्यास्त हो जाने के कारण उसे अवलोकित कर पाना संभव नहीं हुआ। इस तरह होरोक्स और क्रैबट्री इस विरल घटना का अवलोकन करने वाले (इतिहास में) प्रथम दो व्यक्ति बन गए। अपने प्रेक्षणों के आधार पर होरोक्स ने पृथ्वी-सूर्य दूरी को 5 करोड़ 60 लाख मील (9 करोड़ किलोमीटर) औसत वास्तविक मान 14 करोड़ 90 लाख किलोमीटर है; प्राककलित किया। गौरतलब है कि उन दिनों सूर्य से पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों तक की असल दूरियों की कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं थी और इसलिए एक मोटा अनुमान भी महत्वपूर्ण माना जाता था।

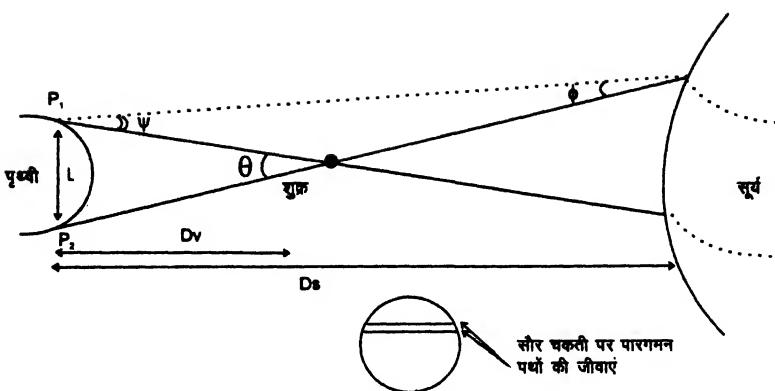
सत्रहवीं सदी के आरंभिक समय का परवर्ती काल समग्र यूरोप के लिए बौद्धिक “नवजागरण” का था। इस काल ने लोगों की “चित्तन धारा” को “हठधर्मी सोच” से “तर्कसंगत सोच” की ओर करवट लेते देखा। शासक वर्ग के साथ-साथ आम लोग भी “शक्ति और समृद्धि” दिलाने वाले एक माध्यम के रूप में विज्ञान की ओर अधिकाधिक रूप से आकृष्ट हुए। अतः वैज्ञानिक शोध एवं अन्वेषण को शासक पक्ष की तरफ से ज्यादा से ज्यादा सहयोग एवं समर्थन प्राप्त हुआ। उस समय यानी सत्रहवीं सदी के समापन दौर तक की एक अनसुलझी समस्या पृथ्वी-सूर्य के बीच की ठीक-ठीक दूरी के मापन को लेकर थी जो सौर जगत की दूरियों को व्यक्त करने के लिए एक परम माक्रम (एक्सोल्यूट स्केल) का कार्य कर पाती। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, सूर्य से विभिन्न ग्रहों की सापेक्ष दूरियों को केपलर के (तीसरे) कक्षीय नियम ( $p^2 \propto a^3$ ) द्वारा ज्ञात किया जा सकता था; लेकिन परम मापक्रम की खोज अधर में ही लटकी रही। अंततः इस समस्या को कैसिनी (तथा स्वतंत्र रूप से फ्लैमस्टीड) द्वारा सुलझाया गया जिसने एक दूसरे से बहुत दूरी पर स्थित पृथ्वी के विभिन्न स्थलों से तारक पृष्ठभूमि के सापेक्ष मंगल ग्रह की स्थिति के लंबन का मापन किया। इस लंबन के मान को पहले-पहल 1672 में सफलतापूर्वक ज्ञात किया जा सका जब मंगल “वियुति” की स्थिति (यानी पृथ्वी के सापेक्ष निकट स्थिति) में था।

कैसिनी पेरिस वेदशाला का प्रथम निदेशक था तथा शनि के दो चमकदार वलयों के बीच के अंतराल, जिसे “कैसिनी विभाजन” की सज्जा दी जाती है, की खोज के लिए वह प्रसिद्ध है। उसके सम्मान में शनि को

भेजे जाने वाले हाल ही के मिशन को “कैसिनी-हाइगेंस मिशन” का नाम दिया गया है। यह अंतरिक्ष यान दो हिस्सों में निर्मित है। शनि के अध्ययन हेतु इसका “कैसिनी” नामक आर्बिटर “हाइगेंस” नामक लैंडर को शनि के सबसे बड़े उपग्रह “टाइटन” पर उतारने के लिए अपने से पृथक करेगा। सौर जगत का टाइटन एकमात्र ऐसा उपग्रह है जिसमें अपेक्षाकृत एक सघन परिमंडल मौजूद है। ऊपर से इस परिमंडल में “धुंधलेपन” की सृष्टि करने वाले कुछ विशिष्ट प्रकार के कण भी मौजूद हैं, जो हाइड्रोकार्बन बहुलकों से सृजित माने जाते हैं। टाइटन की सतह पर संभावित रूप से सागर या द्रव मीथेन की झीलें, जिनके ऊपर मीथेन के ठोस रूप में जमे खंड तैरते हैं, मौजूद हो सकती हैं। इस तरह का परिवेश पूर्वजीवीय (प्रीबायोटिक) अणुओं के विकास के लिए उपयुक्त हो सकता है। अतः इसका अध्ययन वैज्ञानिकों के लिए विशेष आकर्षण का विषय हो सकता है।

मंगल की स्थिति में आए “लंबन” को एक दूसरे से बहुत दूर स्थित दो स्थलों – पेरिस व फ्रेंच गुआना (जहां कोर्ल में यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी का प्रसिद्ध प्रमोचन स्थल अब स्थित है) पर लिए गए प्रेक्षणों द्वारा अवलोकित किया गया। इस तरह पृथ्वी-सूर्य दूरी का मान कैसिनी द्वारा 1.4 करोड़ किलोमीटर निकाला गया; जो होरोक्स द्वारा निकाले गए मान 9 करोड़ किलोमीटर की तुलना में बहुत अधिक था। इसका आधुनिक स्वीकृत मान 1.495.9787066 लाख किलोमीटर, ± 20 मीटर की शुद्धता के साथ माना जाता है। वाइकिंग लैंडरों द्वारा मंगल से पृथ्वी तक रेडियो तरंगों के संचरण-समय के मापन द्वारा इसे प्राप्त किया गया था।

सौर जगत के दूरी संबंधी मापनों में औसत पृथ्वी-सूर्य दूरी (खगोलीय इकाई) की अहमियत के चलते इसका परिशुद्ध निर्धारण सत्रहवीं एवं अठारहवीं सदियों की एक महत्वपूर्ण समस्या थी। प्रसिद्ध ब्रिटिश शाही खगोलविद सर एडमंड हेली ने यह सुझाया था कि पृथ्वी के दो स्थलों, जिनके बीच उत्तर-दक्षिण दिशाओं में विशाल दूरी हो, से शुक्र पारगमन के प्रेक्षणों द्वारा खगोलीय इकाई के परिशुद्ध मान को निकाला जा सकता है। खगोल विज्ञान के इतिहास में हेली के नाम को अधिक ख्याति हेली धुमकेतु के साथ उनके नाम के जुड़े होने के कारण ही मिली हुई है। वह इस बात को प्रस्तावित करने वाले पहले खगोलविद थे कि सूर्य के



चित्र - 7 : शुक्र पारगमन के अवलोकनों द्वारा "खगोलीय इकाई"  $D_e$  को निकालने की व्याख्या करता योजनाबद्ध आरेख।

गुरुत्वीय बल के प्रभाव से आवर्ती कक्षाओं में धूमने वाले धूमकेतु सौर जगत के ही पिंड हैं, लेकिन ग्रहों की लगभग वृत्तीय कक्षाओं के विपरीत उनकी कक्षाएं अति दीर्घवृत्तीय होती हैं। उन्होंने खास तौर पर यह बताया कि 1682 में दिखाई पड़ने वाला धूमकेतु एक आवर्ती धूमकेतु ही है जो हर 76 वर्षों बाद दोबारा दिखाई देता है; और इसलिए 1758 में यह दोबारा दिखना चाहिए।

खगोलीय इकाई के निर्धारण में अंतर्ग्रहों के पारगमन की घटनाओं का इस्तेमाल किया जा सकता है यह धारणा पहले-पहल एक स्काटलैंडनिवासी ग्रेगोरी नामक खगोलविद द्वारा ही सामने रखी गई थी। हेली ने ऐसी विधि सुझाई थी जिसके द्वारा सौर चक्री पर पारगमन पथों की स्थितियों का शुद्धतापूर्वक निर्धारण किया जा सकता था। उस समय तक फोटोग्राफी का विकास नहीं हुआ था और दो दूरस्थ स्थलों से पर्याप्त शुद्धता के साथ पारगमन पथों के प्रेक्षण लेकर उनके बीच के कोणीय पृथक्करण को ज्ञात कर पाना एक असंभव-सा ही कार्य था। इन प्रेक्षण स्थलों द्वारा पारगमनों के घटित होने की सटीक अवधियों के अवलोकन द्वारा पारगमन पथों को शुद्धतापूर्वक निकालने की एक विधि हेली ने प्रस्तुत की। इससे असल समस्या संपर्क समयों को ठीक से रिकार्ड करने के रूप में परिवर्तित हो गई; और परिशुद्ध सूर्य मापकों का विकास तब तक हो चुका था [सन् 1760 में ब्रिटिश घड़ीनिर्माता जॉन

शैलटन ने रायल सोसाइटी को “खगोलीय नियंत्रक” (एस्ट्रोनामिकल रेगुलेटर) कहलाने वाली पांच अति परिशुद्ध घड़ियां बेची थी। ये घड़ियां अब भी रखी हैं तथा शुक्र-पारगमन के मापनों के अलावा कई अन्य प्रयोगों जैसे “गुरुत्वीय त्वरण g” के परिशुद्ध मापन में भी इन्होंने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हेली की विधि को चित्र-7 में योजनाबद्ध ढंग से दर्शाया गया है। सौर चक्री पर पारगमन पथों को पृथ्वी पर उत्तर-दक्षिण दिशा में एक दूसरे से काफी दूरी पर स्थित स्थलों  $P_1$  और  $P_2$  की स्थितियों के मापनों द्वारा शुद्धतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है। (लंबन के कारण) पथों के प्रेक्षित अंतरों से कोण  $\psi$  को निकाला जा सकता है। चित्र - 7 में दर्शाए अनुसार  $\psi = \theta - \phi$ । लेकिन  $\theta \sim L/D_v$  तथा  $\phi \sim L/D_u$ , जहां  $D_v$  तथा  $D_u$  क्रमशः (पृथ्वी से) शुक्र और शनि ग्रहों तक की दूरियां हैं। पहले दी गई व्याख्या के अनुसार  $D_u/D_v$  अनुपात को कक्षीय काल तथा अर्द्धदीर्घ अक्ष के मध्य के सह-संबंध ( $p^2 \propto a^3$ ) को निरूपित करने वाले केपलर के समीकरण द्वारा शुद्धतापूर्वक निकाला जा सकता है। इन समीकरणों के परस्पर संयोजन द्वारा  $D_v$  और  $D_u$  के मान ज्ञात किए जा सकते हैं।

सन् 1761 को होने वाले अगले शुक्र पारगमन (तथा हेली के नाम से प्रसिद्ध धूमकेतु के आविर्भाव) से पहले ही 1742 में हेली का निधन हो गया। लेकिन इस घटना के अवलोकन के लिए ब्रिटेन एवं फ्रांस (तथा कुछ अन्य देशों) ने खगोलविदों के साथ अपने-अपने अभियान दल भेजे थे। इन अभियान दलों का इतिहास बहुत रोचक है लेकिन हम यहां केवल कुछ प्रसंगों का ही उल्लेख करेंगे। ला जेंटिल नामक एक फ्रांसिसी खगोलविद ने भारत स्थित पांडीचेरी से अवलोकन लेने की योजना बनाई थी लेकिन उसका दुर्भाग्य कि फ्रांस और ब्रिटेन के बीच ऐन समय युद्ध छिड़ गया। इससे पहले कि ला जेंटिल पांडीचेरी पहुंच पाता उस पर ब्रिटिशों का अधिकार हो चुका था। ला जेंटिल के जहाज ने मारीशस का रुख किया और उसे जहाज से ही पारगमन को अवलोकित कर संतुष्ट होना पड़ा। इसके बाद मारीशस के जंतु व वनस्पति जगत के अध्ययन में ही ला जेंटिल ने कई वर्ष बिताए। तदुपरांत भारत लौटकर 1769 में घटित होने वाले पारगमन को अवलोकित करने का उसने निर्णय लिया और इस निमित्त उसने एक वेधशाला का निर्माण भी करवाया (इस बीच

उसने भारतीय खगोलीय पद्धति का अध्ययन भी किया)। लेकिन उसका घोर दुर्भाग्य कि ठीक पारगमन के दिन तेज आंधी-तूफान ने पांडिचेरी को अपने आगोश में ले लिया।

ब्रिटिश वैज्ञानिकों को भी अपनी ही तरह की समस्याओं से जूझना पड़ा। सन् 1761 में घटित होने वाले पारगमन का अवलोकन उन्हें “सेंट हेलेना” और सुमात्रा से करना था, लेकिन सुमात्रा की ओर रवाना किए गए दल को फासिसी नौसैनिक हमले के कारण केप ऑफ गुड होप में ही रुक जाना पड़ा। लेकिन उन्हें फिर भी कुछ अवलोकनों को लेने में सफलता मिली जबकि बादलों के कारण सेंट हेलेना के प्रेक्षकों को बस असफलता ही हाथ लगी।

‘चैपी द’ ऑटरोश नामक एक फ्रांसीसी खगोलविद ने साइबेरिया से पारगमन का सफलतापूर्वक अवलोकन किया (पूर्व-पश्चिम दिशा में परस्पर विशाल दूरी पर स्थित दो प्रेक्षण स्थलों से पारगमन के समयों के अंतर के मापन द्वारा भी शुक्र तक की दूरी का अनुमान लगाया जा सकता है) यह देखकर फ्रांसीसी सरकार ने 1769 में होने वाले अगले पारगमन के अवलोकन के लिए एक अभियान दल का नेता बनाकर उसे बाजा (कैलीफोर्निया) भिजवाया। उसके दल द्वारा सफलतापूर्वक प्रेक्षण ले पाना संभव हो पाया लेकिन बाद में उसकी तथा दल के कुछ अन्य सदस्यों की किसी रहस्यमयी बीमारी की चपेट में आने से मृत्यु हो गई।

लोमोनोसॉफ नामक एक रूसी वैज्ञानिक ने सेंट पीटर्सबर्ग से यह महत्वपूर्ण प्रेक्षण लिया कि पारगमन के दौरान शुक्र की चकती एक चमकदार प्रभामंडल से घिरी दिखाई देती है। शुक्र के चारों तरफ मौजूद सघन परिमंडल के अस्तित्व के अनुमान के लिए यह प्रेक्षण महत्व रखता था। शुक्र-परिमंडल से होकर गुजरने के दौरान सूर्य-प्रकाश में आए अपवर्तन के कारण ही यह प्रभाव देखने को मिलता है। अन्य प्रेक्षित किए गए महत्वपूर्ण प्रभाव (शुक्र-परिमंडल द्वारा अपवर्तन के कारण ही) को “कृष्ण बिदु” या “अश्रु बिदु” (ठियर झाप) प्रभाव का नाम दिया गया। इस प्रभाव के कारण शुक्र की चकती दूसरे संपर्क (यानी शुक्र के पूर्ण निमीलन) के बाद भी सूर्य के किवारों के साथ अदीप्त सेतुओं (ब्रज) द्वारा जुड़ी दिखाई देती है। इससे मिलता-जुलता प्रभाव तीसरे संपर्क, जब शुक्र सौर चकती से निर्गमन कर रहा होता है, के समय भी दृष्टिगोचर होता है। इन परिमंडलीय

अपवर्तन प्रभावों के चलते शुक्र-पारगमनों के लिए संपर्क के समयों के सटीक मापन में कठिनाई उत्पन्न होती है (लेकिन बुध का कोई परिमंडल ने होने के कारण ऐसी कठिनाइयां बुध के लिए नहीं उत्पन्न होती)।

समग्रता से देखे जाने पर 1761 के पारगमन के दौरान लिए जाने वाले अवलोकन खगोलीय इकाई के परिशुद्ध निर्धारण की उद्देश्य पूर्ति में नाकाम रहे।

सन् 1769 में घटित होने वाले अगले पारगमन ने भी अनेक अभियान दलों को खासकर प्रशांत महासागर में स्थित द्वीपों, जहां से इस घटना का भली भांति प्रेक्षण लिया जा सकता था, की ओर आने का निमंत्रण दिया। इनमें से सबसे उल्लेखनीय अभियान सर जोसेफ बैंक्स का था जो कैप्टन कुक ने नौपरिसंचलन (सर्कम-ग्लोबल नेविगेशन) दल में शामिल था। सर बैंक्स के लिए घटना का अवलोकन करना ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण था लेकिन कैप्टन कुक की यात्रा के लिए यह घटना महज एक अच्छा बहाना ही थी। ताहिती के एक स्थल से उन्होंने घटना का अवलोकन किया; तथा जहां से ये अवलोकन लिए गए थे उस स्थल को अब “पाइंट वीनस” के नाम से जाना जाता है। कैप्टन कुक की तीन ऐतिहासिक यात्राओं में से उसकी पहली यात्रा के दौरान ही यह घटना घटित हुई थी। तीसरी यात्रा के दौरान सैंडविच द्वीप पर एक स्थानीय द्वंद्युद्ध में 1779 में उसकी हत्या कर दी गई।

जान वेविस (जो पेरो से एक डाक्टर था) नामक एक शौकिया खगोलविद ने इस घटना का रिचमंड (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) से अवलोकन किया तथा अपने प्रेक्षण संबंधी नोट्स “फिलासाफिकल ट्रांसेक्शन्स” में उसने प्रकाशित करवाए। जान वेविस को “कर्कट नीहारिका”, जो चीनियों द्वारा “अतिथि तारे” के रूप में रिकार्ड की गई 1054 में हुए अधिनवतारे विस्फोट की एक अवशिष्ट नीहारिका है, की खोज के लिए अधिक ख्याति प्राप्त है। इस नीहारिका के केंद्रभाग में अब एक सुसंहत न्यूट्रान तारा है जिससे रेडियो तरंगदैर्घ्यों पर प्रति सेकेंड तीस की दर से स्पंदें उत्सर्जित होती हैं। ऐसे पिंडों को स्पंदनशील तारे (पल्सार) का नाम दिया जाता है; तथा कर्कट पल्सार (ठाइप ॥) अधिनवतारा विस्फोट से जिसकी उत्पत्ति होती है) जिसे सबसे कम आयु वाला पल्सार माना जाता है, भी (वर्णक्रम के) गामा-रे, एक्स-रे तथा प्रकाशीय परिसरों में स्पंदों

का उत्सर्जन करता है। पारगमन की घटना द्वारा भी "खगोलीय इकाई" के मान को कैसिनी के पूर्वप्राप्त मान से अधिक शुद्धता से निर्धारित कर पाना संभव न हो सका। इसमें मुख्य कठिनाई दो भिन्न प्रेक्षण स्थलों से पारगमन पथों के सही प्रेक्षण लेने की थी जिनकी फिर आपस में तुलना की जा सकती। फोटोग्राफी का तब तक आविष्कार नहीं हुआ था। कुछ यूरोपीय प्रेक्षकों ने भारत से भी प्रेक्षण लिए लेकिन उनके द्वारा प्राप्त परिणाम किसी वैज्ञानिक महत्व के नहीं थे।

सन् 1874 में घटित होने वाले अगले पारगमन तक परिदृश्य में आमूल-चूल परिवर्तन हो गया था। इस दौरान फोटोग्राफी का आविष्कार (1835) भी हो चुका था जिससे (पारगमन) पथों की शुद्धतापूर्वक तुलना कर पाना संभव हो गया था। साथ ही साथ उत्तम गुणवत्ता वाले दूरबीन तथा समय मापन विधियों की खोज भी हो चुकी थी। नतीजतन 1874 के पारगमन के दौरान लिए गए प्रेक्षणों ने खगोलीय इकाई का काफी हद तक संतोषजनक मान - 1490 लाख किलोमीटर प्रदान किया (इसकी तुलना 1961 में शुक्र की अंतर्युति के दौरान रेडियो साउंडिंग के जरिए प्राप्त 1495.97870 लाख किलोमीटर के मान, जिसे आधुनिक स्वीकृत मान का दर्जा हासिल है, के साथ की जा सकती है)। सन् 1874 को घटित हुए पारगमन का अवलोकन बर्लिन वैद्यशाला से संबद्ध अर्नस्ट एमिल बेकर द्वारा भी किया गया था।

सन् 1874 तथा उसके बाद 1882 में होने वाले पारगमन की घटनाओं के अवलोकन के लिए फ्रांसीसियों ने शिद्धत से प्रयास किए। नागासाकी, पीकिंग, सैगोन, नाउमिया, सेंट पाल तथा मॉरिश द्वीपों से लेकर उत्तर अफ्रीका, मैक्सिको तथा चिली के दर्मियान दूर-दूर तक फैले अंचलों तक अभियान दल भेजे गए। पारगमन (के दौरान लिए गए) प्रेक्षणों के आधार पर न्यूकांब ने सौर लंबन (सूर्य पर लंबन) को 8.794 सेकेंड के बराबर पाया जिससे खगोलीय इकाई का मान 1490 लाख किलोमीटर निकला। पिछले पारगमनों के दौरान पिंगरे ने भी इससे बहुत मिलता-जुलता ही मान प्राप्त किया था हालांकि लिए गए प्रेक्षणों में आपस में बहुत भिन्नता थी। यहां यह गौरतलब है कि उन्हीं दिनों रॉकी पर्वत (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) पर 4300 मीटर की ऊँचाई पर स्थापित किए गए येल हीलियोमीटर, जो अपने की किस्म का उन दिनों का सबसे

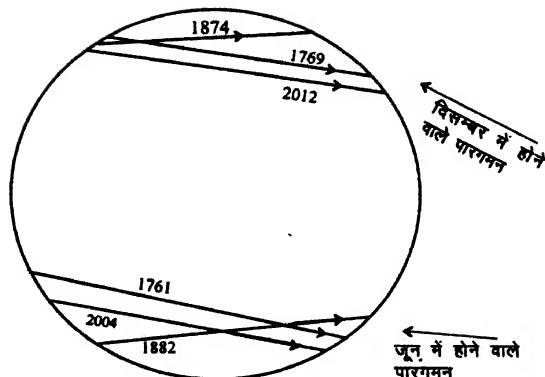
विशाल उपकरण था, ने इस घटना के अवलोकन के साथ ही अपने वैज्ञानिक कार्यक्रम का श्रीगणेश भी किया था।

- अलबत्ता, खगोलीय इकाई को प्राप्त करने के उद्देश्य से पारगमन की घटनाओं के अवलोकन का महत्व अब जाता रहा है क्योंकि रेडार प्रतिध्वनि विधि द्वारा इसका अधिक परिशुद्ध मापन कर पाना अब संभव हो गया है। प्रकृति की विरल घटनाओं के रूप में ही अब शुक्र के पारगमन मुख्यतया शौकिया खगोलविदों तथा विज्ञान संचारकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। आगामी 8 जून, 2004 को होने वाला शुक्र पारगमन दिसंबर 1882 के बाद घटित होने वाला पहला पारगमन है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, स्वस्थ कोरी आंखों से भी इस घटना का अवलोकन किया जा सकता है, लेकिन सूर्य की चमक को कम करने के लिए उपयुक्त सुरक्षा युक्तियों का प्रयोग किया जाना लाजिमी है।

अन्य अंतर्ग्रहों जैसे बुध के पारगमन प्रेक्षणों ने मूलभूत भौतिकी के क्षेत्र में कहीं अधिक महत्वपूर्ण निभाई है। प्रति सदी चौदह की दर से होने वाले इन पारगमनों के सावधानीपूर्वक प्रेक्षण लिए गए हैं ताकि उनके घटित होने के समय तथा सौर चकती के साथ “संपर्क बिदुओं” की स्थितियों के परिशुद्ध मापन द्वारा कक्षीय प्राचलों का सही निर्धारण किया जा सके। बुध की कक्षा अति दीर्घवृत्तीय है तथा सूर्य के सबसे निकट स्थित कक्षीय बिदु, यानी उपसौर, परिस्सरण गति का प्रदर्शन करती है (यानी आकाश में इसकी दिशा एक विशिष्ट दर से घूमती है)। अन्य ग्रहों के गुरुत्वीय बलों के कारण बुध पर लगने वाले क्षोभकारी (परटर्बिंग) प्रभावों के चलते ही यह “परिस्सरण” गति होती है जिसका परिशुद्ध न्यूटन के गुरुत्वीय सिद्धांत के प्रयोग द्वारा किया गया है। लेकिन पारगमन प्रेक्षणों ने परिस्सरण के 574 चाप सेकेंड प्रति सदी के दर तथा 531 चाप सेकेंड के परिकलित दर के बीच काफी असंगति का प्रदर्शन किया। इससे पूर्व एक फ्रांसिसी खगोलविद-गणितज्ञ ला वेरियर ने नेच्यून द्वारा यूरेनस की कक्षा में उत्पन्न क्षोभों के जरिए नेच्यून के अस्तित्व और उसकी स्थिति के बारे में अपना पूर्वानुमान प्रस्तुत किया था। अतीत की अपनी इस सफलता से उत्साहित होकर बुध की कक्षा के दायरे के भीतर एक ग्रह के अस्तित्व की उसने भविष्यवाणी कर दी और उसे वल्कान नाम दिया। उल्लेखनीय है कि पूर्ण सूर्य ग्रहणों के दौरान

“वल्कान” को खोजने के कई प्रयास हुए लेकिन सबमें असफलता ही हाथ लगी। आखिरकार इस रहस्य का भेद 1915 में तब खुला जब आइंस्टीन ने अपने आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धांत के आधार पर यह प्रदर्शित किया कि उनके सिद्धांत के अनुसार परिकलित किए जाने पर परिस्सरण दर प्रति सदी 574 चाप सेकेंड आती है; अतः वल्कान (के बारे में परिकल्पना करने) की कोई आवश्यकता नहीं थी। सूर्य के निकट के आकाश की वक्रता के कारण वहां मौजूद तारों की स्थिति में आए आभासी विस्थापन (जिसे 1919 के पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान एडिंगटन के नेतृत्व में कार्यरत दल ने प्रक्षित किया था) का मापन तथा आइंस्टीन का उल्लिखित प्रेक्षण आरंभिक तौर पर लिए गए दो ऐसे प्रेक्षण थे जिनसे आपेक्षिकता के सामान्य सिद्धांत को मजबूत समर्थन मिला था।

अंतर्ग्रहों के पारगमनों की घटनाएं चंद्रमा के कारण उत्पन्न सूर्य ग्रहण से बहुत मिलती-जुलती ही हैं। चंद्रमा का कक्षीय तल पृथ्वी के क्रांति वृत्त (एकिलिटिक) के साथ 5 अंश का कोण बनाता है। अतः हर नवचंद्र (अमावस्या) को चंद्रमा सूर्य को बाधित नहीं करता है; वह थोड़े उत्तर या फिर थोड़े दक्षिण से होकर गुजर जाता है। वे बिंदु जहां चंद्रमा की कक्षा क्रांतिवृत्तीय तल को काटती है कक्षा के पात बिंदु कहलाते हैं, जिन्हें “राहु” और “केतु” की संज्ञा दी जाती है। किसी विशेष नवचंद्र दिवस पर अगर सूर्य इन बिंदुओं में से किसी एक के नजदीक हो तो सूर्य ग्रहण घटित हो सकता है। किसी दीर्घवृत्त के लिए “निकटता” की सहिता सीमा (मार्जिन ऑफ टालेरेंस) + 15 अंश होती है। शुक्र की कक्षा क्रांति वृत्त के साथ 3 अंश का कोण बनाती है तथा क्रांतिवृत्त को उसकी कक्षा जिन बिंदुओं पर काटती है वे उसकी कक्षा के पात बिंदु कहलाते हैं। अगर शुक्र की किसी विशेष “अंतर्युति” के दौरान सूर्य उसके पात बिंदुओं में से किसी एक के निकट हो तभी शुक्र सौर चक्रती का पारगमन करता दृष्टिगोचर होता है, अन्यथा वह सूर्य के थोड़ा उत्तर या फिर थोड़ा दक्षिण की ओर से होकर गुजर जाता है। “निकटता” की सहिता सीमा सूर्य ग्रहण की तुलना में काफी कम होती है क्योंकि शुक्र चंद्रमा की अपेक्षा काफी दूरी पर स्थित होता है। वर्तमान सदी में सूर्य शुक्र की कक्षा के पात बिंदुओं की दिशा में स्थित है तथा पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करते हुए 8 दिसंबर तथा 7 जून की संगत स्थितियों में है; अतः शुक्र की अंतर्युति इन तिथियों के दो दिनों



**चित्र - 8 :** पारगमन पथों के निम्नोंमुख (दक्षिणोंमुख) विस्थापन को दर्शाने वाला चित्र। कई सदियों बाद जून में पहले तथा दिसंबर में बाद में होने वाले पारगमन युगम दोनों ही सौर चकती के दायरे के बाहर होंगे और तब पारगमन युगमों की बजाए एकल पारगमन ही अवलोकित किए जा सकेंगे।

के भीतर होने पर ही शुक्र के पारगमन दृष्टिगोचर होंगे। इस तरह शुक्र पारगमन की घटनाएं ग्रहणों की तुलना में कहीं अधिक विरल होती हैं। शुक्र के पारगमन की विरलता का अन्य कारण इसका लंबा, 584 दिनों का संयुति काल (इसकी दो क्रमागत अंतर्युतियों के बीच का समय अंतराल) है। चंद्रमा के लिए संयुति काल केवल 29.5 दिन होता है। बुध ग्रह के लिए पारगमन घटित होने के संभावित दिवस 8 मई के तीन दिन तथा 9 नवंबर के पांच दिन के भीतर होते हैं। बुध की कक्षा की अति उत्केंद्रता ही इस अंतर के लिए जिम्मेदार होती है। इसके अतिरिक्त क्योंकि बुध का संयुति काल केवल 116 दिन है, उसके पारगमन अपेक्षाकृत अधिक शीघ्रता से घटित होते हैं। कक्षाओं की परिस्सरण गतियों के कारण पात बिदुओं की दिशाओं में मंदतर परिवर्तन होते हैं। अतः शुक्र के पारगमन की "केंद्रित तिथियां" प्रति सदी एक की दर से धीरे-धीरे पीछे खिसक रही हैं। कुछ सदियों पूर्व रिकार्ड किए गए पारगमन जून व दिसंबर में वर्तमान तिथियों से कुछ दिन पहले घटित हुए थे।

शुक्र के पारगमन युगम आठ वर्षों के अंतराल से, एकांतर क्रम से दिसंबर व जून में होते हैं। दिसंबर तथा जून में सूर्य एकांतर क्रम से शुक्र की कक्षा के आरोही तथा अवरोही पातों की दिशा में दृष्टिगोचर होता है [आरोही पात वह बिदु है जहां ग्रह क्रांतिवृत्तीय तल को दक्षिण से उत्तर दिशा में काटता है। अन्य पात को अवरोही पात की संज्ञा दी जाती है]।

लेकिन ये पारगमन युगमों में ही क्यों घटित होते हैं? इसकी व्याख्या रोचक है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, शुक्र का संयुति काल (दो क्रमागत अंतर्युतियों के बीच का अंतराल) 583.9 दिन है जबकि पृथ्वी का अक्षीय काल 365.25 दिन है। अतः 8 वर्षों (2922 दिन) बाद शुक्र 5 संयुति काल की अवधि पूरी कर अपनी कक्षा में दो दिन आगे निकल जाएगा। शुक्र की कक्षा की क्रांति वृत्त से आनति (इंविलनेशन) इतनी कम है कि दो दिनों की अवधि में शुक्र की स्थिति उत्तर-दक्षिण दिशा में मात्र 22 चाप मिनट से ही विस्थापित होती है। सूर्य के कोणीय आकार (30 चाप मिनट) से यह मान कम होने के कारण किसी विशेष अंतर्युति पर सौर चकती के केंद्र से हटकर 7 चाप मिनट के कोण पर अगर कोई पारगमन घटित होता है तो आठ वर्ष बाद अंतर्युति के दौरान शुक्र का पथ सौर चकती पर पिछले पारगमन की अपेक्षा 22 चाप मिनट से विस्थापित होता दिखाई देगा। लेकिन हमेशा ही ऐसा हो यह जरूरी नहीं है। अगर पहला पारगमन केंद्र से 7 चाप मिनट के दायरे के अंदर है तो आठ वर्ष बाद होने वाला पारगमन सौर चकती पर नहीं होगा। जैसा कि चित्र - 8 में दर्शाया गया है, क्रमागत चक्रों के पारगमन पथ दक्षिण दिशा की ओर धीरे-धीरे खिसक रहे हैं। वर्तमान युग में पारगमन  $105\frac{1}{2}$  व 8 वर्षों (दिसंबर में होने वाले पारगमन) तथा  $121\frac{1}{2}$  व 8 वर्षों (जून में होने वाले पारगमन) के अंतराल से घटित हो रहे हैं जिससे पूर्ण चक्र की  $243$  वर्ष की अवधि हमें प्राप्त होती है।

लेकिन 1388 के पारगमन पथ के सौर चकती के दायरे में न आ पाने के कारण 1396 के दिसंबर माह में घटित होने वाला पारगमन एकल ही रहा होगा, क्योंकि ये पथ दक्षिण दिशा की ओर धीरे-धीरे विस्थापित हो रहे हैं। अब से अनेक सदियों बाद 243 की पूर्ण अवधि में केवल दो पारगमन ही घटित होंगे और दिसंबर में होने वाला आरोही-पात पारगमन जून में होने वाले अवरोही-पात पारगमन के  $105\frac{1}{2}$  साल बाद तथा जून में घटित होने वाला अगला पारगमन  $137\frac{1}{2}$  वर्ष बाद घटित होगा। इन अंतरालों में असमानता मुख्यतया पृथ्वी की कक्षा की लघु उत्केंद्रता के चलते उसकी कक्षीय गति में उत्पन्न असमानता के कारण होती है। 243 वर्षों का चक्र 152 संयुति काल की अवधि के साथ बहुत गहरा तालमेल रखता है।

हालांकि सूर्य ग्रहण तथा अंतर्ग्रहों के पारगमन की घटनाएं आपस में बहुत समानता रखती हैं, कुछ अंतरों पर गौर करना जरूरी है। एक तो चंद्रमा की चकती का कोणीय व्यास अंतर्ग्रहों के कोणीय व्यास की तुलना में बहुत अधिक होता है तथा चंद्रमा द्वारा सौर चकती को ढकने की घटना इतनी स्पष्ट होती है कि प्रागैतिहासिक काल से ही ग्रहणों के बारे में जानकारी मिलती रही है। तुलनात्मक दृष्टि से, पारगमन के समय शुक्र की चकती केवल 1 चाप मिनट (सौर चकती का 1/30 वां हिस्सा) का ही कोण बनाती है। मानव नेत्र औसत रूप से वस्तुओं का केवल 4 चाप मिनट तक ही विभेदन कर सकती है; अतः पारगमन के दौरान शुक्र की चकती को कोरी आंख विभेदित नहीं कर पाती है। लेकिन इसे “लक्ष्य” किया जा सकता है अगर कोई प्रेक्षक “इसे लक्षित” करने का प्रयास करे। यही कारण है कि दूरबीन के आविष्कार तथा (घटना की) भविष्यवाणी करने की क्षमता के विकास के पूर्व शुक्र के पारगमन की खोज सांयोगिक रूप से भी न हो सकी (बुध की चकती तो और भी छोटी, पारगमन के समय केवल 10 चाप सेकेंड की होती है)। पारगमन को देखते समय पर्याप्त सावधानी बरती जानी आवश्यक है। इसके अंतर्गत किसी उपयुक्त सौर फिल्टर का प्रयोग आंखों को सौर विकिरण से बचाने के लिए किया जाना चाहिए।

दूसरा मुख्य अंतर पारगमन घटित होने की दिशा से पड़ता है। चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है, अतः पृथ्वी और सूर्य के बीच के गुजरते समय यह सौर चकती के आगे से पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर निकलता है। ग्रह सूर्य का चक्कर काटते हैं तथा अपनी वामावर्त कक्षीय गति के दौरान वे पृथ्वी से “आगे” निकल जाते हैं; अतः पारगमन सूर्य के पूर्वी किनारे से आरंभ होकर उसके पश्चिमी किनारे पर समाप्त होता है। तीसरा मुख्य अंतर “छाया” की गति के चलते पड़ता है। चंद्रमा (पृथ्वी के) बहुत नजदीक होने के कारण इसकी छाया की गति बहुत कम, एक किलोमीटर प्रति सेकेंड से भी कम होती है।

दरअसल, पूर्णता (पूर्ण ग्रहण) के समय छाया को पश्चिम दिशा से अग्रसर होता हुआ देखा जा सकता है। ग्रहों के बहुत दूर स्थित होने के कारण पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर “छाया” (इसे कोई स्पष्ट छाया भी नहीं कह सकते, तकनीकी दृष्टि से यह उपच्छाया मात्र ही है) अपेक्षाकृत

अधिक, दसियों किलोमीटर प्रति सेकेंड की रफ्तार से अग्रसर होती है। इसी कारणवश, जहां सूर्य ग्रहण भिन्न स्थानों से भिन्न दिखाई देता है तथा उस समय सूर्य के क्षितिज के ऊपर स्थित होने के बावजूद कुछ स्थानों से उसे देखा नहीं जा सकता, वहीं पारगमन हर स्थान से जहां उस समय सूर्य प्रकाशमान हो (लंबन के कारण पारगमन पथ में तनिक विस्थापन के सिवाय) लगभग एक जैसा ही दृष्टिगोचर होता है।

अंत में इस विरल खगोलीय घटना, जिसकी भविष्यवाणी केपलर द्वारा किए जाने तथा हेली द्वारा इससे जुड़े एक महत्वपूर्ण खगोलीय पहलू को उजागर करने के बावजूद दोनों को ही इसे अवलोकित करने का अवसर नहीं मिल पाया था, को सुरक्षात्मक ढंग से अवलोकित करने के कुछ “टिप्स” प्रस्तुत हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, सौररक्षी (सनसेफ) उपयुक्त मानक गागल्स लगाकर सौर चकती में सीधा देखते हुए इस घटना को अवलोकित किया जा सकता है। यहां यह भी गौर करने योग्य है कि पारगमन के दौरान सूर्य को सीधा देखने में उतना खतरा नहीं है जितना कि पूर्ण सूर्य ग्रहण को देखने में होता है। सूर्य ग्रहण के दौरान पृष्ठभूमि अंधकारमय होती है तथा आंख की आइरिस धुधले प्रकाश को देखने के लिए पूरी तरह से विस्तारित होती है; अतः रेटिना पर बनने वाला सौर चकती का प्रतिबिंब काफी नुकसानदायक हो सकता है। इसके विपरीत, पारगमन के दौरान पृष्ठभूमि अति प्रकाशमान होती है जिससे आइरिस पूर्ण रूप से संकुचित अवस्था में होती है। लेकिन पारगमन के अवलोकन के लिए चकती को “एकटक निहारना” पड़ता है जो आंखों को काफी क्षति पहुंचा सकता है। अतः अगर आपके गागल्स पर्याप्त रूप से काले नहीं हैं तो बेहतर यही होगा कि आप सूर्य को एकटक न देखें।

एक कहीं अच्छा तरीका सूर्य के आवर्धित प्रतिबिंब को एक छोटे दूरबीन की मदद से एक परदे पर प्रक्षेपित करना है। नेत्रिका (आई पीस) को उसकी सामान्य फोकल स्थिति से थोड़ा दूर हटाते हुए उपयुक्त आवर्धन वाले प्रतिबिंब को परदे पर प्राप्त किया जा सकता है। एक न्यूटनीय दूरबीन इस काम के लिए बहुत उपयुक्त है क्योंकि इसके द्वारा प्रतिबिंब को एक अदीप्त कमरे (डार्क रूम) में प्राप्त किया जा सकता है, जहां इसे दर्शकों के एक बड़े दल द्वारा एक साथ ही देखा जा सकता है।

अगर प्रत्यक्ष दृष्टि (अपवर्तक अथवा कैसेग्रेन किस्म की परावर्तक) दूरबीन का इस्तेमाल करना हो तो परदे पर थोड़ी छाया का प्रबंध करना उचित रहता है ताकि प्रतिबिंब को देखने पर आंखों पर जोर न पड़े।

अगर संपर्क समयों (प्रथम संपर्क जब शुक्र सूर्य के किनारे का स्पर्श करता है, द्वितीय संपर्क जब शुक्र पूर्ण रूप से निमीलित हो जाता है तथा निर्गमन के दौरान होने वाले दो अन्य मिलते-जुलते संपर्क) का मापन लेना हो तो एक अच्छे (करीब 100–150 मिलीमीटर अपरचर वाले) दूरबीन के जरिए प्रत्यक्ष अवलोकन करना ही अधिक उपयुक्त रहता है। लेकिन दूरबीन के अभिदृश्यक (आबजेक्टिव) में किसी मानक निर्माता द्वारा बना उपयुक्त सौर फिल्टर लगा होना अति आवश्यक है (अथवा क्या लगाना उचित होगा इसका निर्णय लेने में आपको स्वयं एक सक्षम खगोलविद होना चाहिए)। निस्संदेह, इस तरह की दूरबीन द्वारा अवलोकन लेना अधिक संतोषजनक सिद्ध हो सकता है क्योंकि कई घटनाओं जैसे मसि बिदु (इंक ड्राप) प्रभाव तथा शुक्र के निमीलन के बाद अपवर्तन के कारण उसके चारों ओर बनने वाले प्रभामंडल का भी अवलोकन किया जा सकता है। (सौर चक्री के साथ) संपर्क से पूर्व शुक्र को देखना नयनाभिराम हो सकता है जब इसके चारों तरफ एक पूर्ण वलय बना होता है (अच्छे प्रेक्षण स्थलों जहां का आकाश गहरा नीला हो से ही इसे अवलोकित किया जाना संभव है)।

छोटा दूरबीन उपलब्ध न होने पर सौर प्रतिबिंब को चश्मों में लगने वाले बढ़िया किस्म के लेंसों द्वारा किसी परदे पर प्रक्षेपित किया जा सकता है। अभिदृश्यक के लिए +2 डाइऑप्टर तथा प्रक्षेपण कि लिए +5 डाइऑप्टर के लेंसों का प्रयोग किया जा सकता है।

इन टिप्स (तथा कई अन्य जिन्हें घटना से पूर्व आपको अवश्य दिया जाएगा) के प्रयोग द्वारा 8 जून को होने वाली घटना के अवलोकन के लिए तैयार हो जाइए। संपूर्ण घटना का अवलोकन भारत के किसी भी स्थान से किया जा सकता है।

## शुक्र पारगमन - 08 जून 2004

### भारतीय परिस्थितियों के अनुसार

सूर्य की चक्रती के समने से शुक्र का दुर्लभ पारगमन 08 जून 2004 को होगा। यह अनेकों घटना पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में देखी जा सकेगी। निम्नलिखित तालिका कुछ भारतीय नगरों से संबंधित शुक्र पारगमन (भारतीय समय के अनुसार) के लिए भविष्यद्वाणी प्रस्तुत करती है।

#### पारगमन सम्पर्क

स्थान	सम्पर्क 1	सम्पर्क 2	सम्पर्क 3	सम्पर्क 4	
	वाहा	आतंरिक	महातम	आतंरिक	
	जंत: प्रवेश घंटे मि. से.	जंत: प्रवेश घंटे मि. से.	पारगमन घंटे मि. से.	निर्गमन घंटे मि. से.	
<b>भारत</b>					
अगरतला	10:44:34	11:03:32	13:46:43	16:31:06	16:50:20
आगरा	10:46:01	11:05:04	13:48:01	16:31:37	16:50:48
आहमदाबाद	10:46:24	11:05:25	13:48:37	16:32:15	16:51:22
इलाहाबाद	10:45:35	11:04:35	13:47:39	16:31:30	16:50:42
आसनसोल	10:45:00	11:03:58	13:47:08	16:31:20	16:50:32
बैंगलोर	10:45:31	11:04:24	13:48:14	16:32:44	16:51:46
भोपाल	10:45:57	11:04:56	13:48:07	16:31:56	16:51:04
भुवनेश्वर	10:44:58	11:03:54	13:47:16	16:31:38	16:50:48
चंडीगढ़	10:46:14	11:05:20	13:48:06	16:31:27	16:50:40
देन्हार्ड	10:45:15	11:04:07	13:47:56	16:32:33	16:51:36
कोयंबटूर	10:45:30	11:04:22	13:48:19	16:32:57	16:51:58
दिल्ली	10:46:09	11:05:13	13:48:05	16:31:34	16:50:46
धनबाद	10:45:04	11:04:02	13:47:12	16:31:21	16:50:34
गंगटोक	10:44:59	11:04:56	13:48:36	16:32:46	16:51:49
गुवाहाटी	10:44:38	11:03:37	13:46:41	16:30:55	16:50:11
हैदराबाद	10:45:37	11:04:32	13:48:04	16:32:19	16:51:24
इम्फ़ाल	10:44:21	11:03:19	13:46:28	16:30:54	16:50:10
इन्दौर	10:46:05	11:05:05	13:48:17	16:32:04	16:51:12
ईटानगर	10:44:29	11:03:29	13:46:30	16:30:46	16:50:03
जबलपुर	10:45:41	11:04:40	13:47:51	16:31:47	16:50:56
जयपुर	10:46:13	11:05:16	13:48:15	16:31:46	16:50:57
कानपुर	10:45:46	11:04:48	13:47:48	16:31:31	16:50:43
कावरती	10:45:56	11:04:49	13:48:49	16:33:17	16:52:16
कोलकाता	10:44:49	11:03:46	13:47:00	16:31:20	16:50:32
लखनऊ	10:45:44	11:04:45	13:47:44	16:31:28	16:50:40
मदुरै	10:45:20	11:04:11	13:48:13	16:32:58	16:51:58
मुम्बई	10:46:15	11:05:13	13:48:39	16:32:33	16:51:38
नागपुर	10:45:42	11:04:40	13:47:58	16:31:59	16:51:07
नई दिल्ली	10:46:09	11:05:12	13:48:06	16:31:34	16:50:46
पटना	10:45:16	11:04:16	13:47:19	16:31:18	16:50:31
पोर्टलैंपर	10:43:51	11:02:40	13:46:38	16:31:56	16:51:04
पुणे	10:46:08	11:05:05	13:48:33	16:32:31	16:51:36
शिलांग	10:44:36	11:03:34	13:46:40	16:30:57	16:50:13
श्रीनगर	10:46:32	11:05:40	13:48:17	16:31:22	16:50:37
सूत	10:46:19	11:05:19	13:48:38	16:32:23	16:51:29
क्रिबेन्ड्रम	10:46:24	11:04:14	13:48:22	16:33:10	16:52:10
वाराणसी	10:45:28	11:04:28	13:47:32	16:31:27	16:50:39
सिल्हाट	10:45:08	11:04:02	13:47:33	16:31:59	16:51:06

## वैज्ञानिक शब्दावली

**अपसौर (और उपसौर)** : सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्तीय कक्षा में चक्कर काटते किसी ग्रह की उससे महत्तम दूरी; तथा लघुत्तम दूरी को उपसौर कहते हैं। अपसौर तथा उपसौर के बीच का अंतर अधिक दीर्घवृत्तायुक्त कक्षाओं के लिए अधिक होता हैं सूर्य के चारों ओर धूमकेतु अति दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में चक्कर काटते हैं तथा उनके उपसौर शुक्र की कक्षा से कम फासले जबकि अपसौर वरुण (नेच्यून) की कक्षा से भी अधिक फासले पर स्थित होते हैं।

**अर्द्धक कला (आइकोटॉर्मी)** : (अर्द्धचंद्र की तरह) “अर्द्धकला” की यथार्थ स्थिति। “अर्द्धक कला” के समय सूर्य, पिंड (चाहे वह कोई अंतर्ग्रह हो या चन्द्रमा) तथा पृथ्वी के बीच का कोण एकदम 90 अंश होता है। अपने अर्द्ध कला के समय चंद्रमा सूर्य के अति निकट होने के कारण सूर्य की दिशा के “लगभग” लंबवत् ही वह दिखाइ देता है (यही कारण है कि चंद्रमा की अर्द्धकला “नवचंद्र” के करीब 7-8 दिन बाद होती है)। लेकिन अंतर्ग्रहों के लिए स्थिति काफी भिन्न है (देखें चित्र-3)।

**अधिनवतारा (टाइप I, टाइप II)** : अधिनवतारे (सुपरनोवा) भयंकर तारक विस्फोट होते हैं जिनमें कोई तारा अपने विनाश को प्राप्त होता है; लेकिन अल्प समय के लिए इसकी चमक अरबों गुना बढ़ जाती है। इस तरह के विस्फोटों की मुख्यतया दो किसमें होती हैं। टाइप I अधिनवतारों में कोई तारा, जिसका आरंभिक द्रव्यमान सौर द्रव्यमान की तुलना में 1.5 गुना या उसे भी अधिक होता है; नाभिकीय संश्लेषण प्रक्रमों से गुजरता हुआ जब आयरन नाभिक तक पहुंचता है तब उसमें विस्फोट होता है। दरअसल, इस प्रकार के अधिनवतारे में विस्फोट से पूर्व क्रोड में दबाव में अचानक बहुत अधिक गिरावट आ जाने (क्रोड के निपात) के कारण एक अंतर्मुखी स्फोट (इंस्लोजन) होता है। एक प्रतिक्षेप प्रभाव (रिबाउंड इफेक्ट) के रूप में ही तब विस्फोट होता है जिससे केंद्र भाग में एक अति संहत पिंड शेष बच जाता है जो न्यूट्रान तारा या कृष्ण विवर भी हो सकता है।

**आधसौर नीहारिका (प्रोटोसौलर नेबुला)** : चकती के आकार का धूलभरा गैस का बादल जिससे सौर जगत तथा सूर्य का उद्भव हुआ। बादल के केंद्र भाग के संघनन से सूर्य तथा बाह्य भागों के संघनन से ग्रहों का जन्म हुआ।

**उन्नतांशमापी (एस्ट्रोलेब)** : खगोलीय पिंडों की स्थितियों को गोलीय ज्योमिति की गणनाओं के बगैर ही प्राप्त करने की एक प्राचीन युक्ति जिसे मध्यकाल तक प्रयोग में लाया जाता रहा। अब यह युक्ति महज ऐतिहासिक रूचि की वस्तु मात्र बनकर रह गई है। कृष्ण या काला बिंबु (इसे मस्ति बिंबु/अश्रुबिंबु भी कहते हैं) : शुक्र का पारगमन शुरू होने (तथा इसकी लगभग समाप्ति) के समय सौर किरणें इसके सघन परिमंडल से होकर गुजरते समय उसके द्वारा प्रबल रूप से अपवर्तित होती हैं। इससे एक प्रकाशीय प्रभाव की सृष्टि होती है जिसमें शुक्र की चकती दूसरे संपर्क के यथार्थ (ठीक-ठीक)

समय (यानी जब शुक्र सौर चकती में बस निर्माणित ही होता है) के बाद भी सौर पाद (सोलर लिंब) या सूर्य के किनारे के साथ एक अदीप्त लगने वाले "सेतु" के साथ जुड़ी हुई प्रतीत होती है। इससे निलता-जुलता प्रभाव लगभग तीसरे संपर्क के दौरान शुक्र के निर्गमन के समय भी दृष्टिगोचर होता है। इस प्रभाव को "कृष्ण बिंदु प्रभाव" कहा जाता है तथा संपर्कों के यथार्थ या सटीक समयों के मापन की कठिनाइयों के लिए यह मुख्य रूप से जिम्मेदार होता है।

**क्रांतिवृत्त :** वह तल जिसमें पृथ्वी सूर्य के चारों ओर पृथ्वी धूमती है क्रांतिवृत्तीय तल कहलाता है। खगोलीय गोले या खगोल (सेलेस्टियल स्पियर) पर इस तल का प्रक्षेपण क्रांतिवृत्त कहलाता है तथा साल के किसी भी समय सूर्य इसी वृत्त के ही किसी बिंदु पर पाया जाता है। कक्षीय ग्रह इस तल के साथ लघु कोण ही बनाते हैं; केवल बुध व प्लूटो ही अपवाद हैं जो इसके साथ क्रमशः 7 अंश तथा 12 अंश के अपेक्षाकृत बड़े कोण बनाते हैं।

**खगोलीय इकाई :** पृथ्वी और सूर्य के मध्य की औसत दूरी सूर्य से ग्रहों की सापेक्षिक दूरियों को उनके कक्षीय कालों द्वारा, केप्लर के तृतीय कक्षीय नियम, जो कक्षीय काल को अर्द्धदीर्घ अक्ष से संबंधित करता है, के प्रयोग से आसानी से निकाला जा सकता है; और इसे खगोलीय इकाई के माप के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। खगोलीय इकाई के माप को किलोमीटर में निकालना एक बड़ी विकट समस्या थी जिसे कैसिनी द्वारा 1672 में बड़ी अच्छी तरह से सुलझाया गया था। खगोलीय इकाई का वर्तमान स्वीकृत मान 149597871 किलोमीटर है।

**ग्रहाणु (प्लेनेटसिमल)** : जब सौर जगत में आद्यसौर चकती के पदार्थ की अभिवृद्धि (एक्रियन) प्रक्रिया द्वारा ग्रह अपने निर्माण की प्रक्रिया में थे तो इस आरंभिक काल में ग्रह सदृश लेकिन आकार में कहीं छोटे (करीब 100 से 1000 किलोमीटर तक) पिंडों का सृजन बड़ी संख्या में हुआ होगा। इन्हें ग्रहाणु कहते हैं। इन ग्रहाणुओं के परस्पर संयोजन द्वारा ही ग्रहों का निर्माण हुआ। बृहस्पति की कक्षा के भीतर पाए जाने वाले शैलीय क्षुद्रग्रह तथा नेप्यून की कक्षा से परे पाए जाने वाले बर्फाले धूमकेतु सदृश पिंड (जो परानेच्यूनीय या क्यूपर-बेल्ट पिंड भी कहलाते हैं) कुछ ऐसे बचे हुए ग्रहाणु हो सकते हैं।

**ग्रीन हाउस प्रभाव :** किसी ग्रह के परिमंडल द्वारा सूर्य की दृश्य प्रकाश की ऊर्जा को कैद करने की घटना जिसमें वह परिमंडल दृश्य प्रकाश के लिए पारदर्शी लेकिन अवरक्त प्रकाश के लिए अपारदर्शी होता है। (ग्रह की) सतह को दृश्य विकिरण उत्तप्त कर देती है; यह सतह फिर (स्पेक्ट्रम के) अवरक्त परिसर में विकिरण का उत्सर्जन करती है। लेकिन चूंकि अवरक्त विकिरण बाहर नहीं जा पाती है, सतह उच्च तापमान को जा पहुंचती है। शुक्र के परिमंडल में प्रबल ग्रीन हाउस प्रभाव ने इसके सतह-तापमान को असामान्य रूप से ऊंचा, करीब 470 डिग्री सेलिसियस के उच्च मान तक पहुंचाने का कार्य किया है।

**बुर्जलतामंडल (एस्थिनोस्पियर) :** भूपटल के नीचे तथा प्रावर (मेंटल) के ऊपर स्थित एक उच्च तापमान वाला क्षेत्र जहां सिलिकेट निर्मित शैल गलित या अर्द्ध-गलित अवस्था में पाए जाते हैं। पृथ्वी की ज्वालामुखीय सक्रियता इसी क्षेत्र में ही केंद्रित होती है तथा लावा की उत्पत्ति भी यहीं होती है। प्लेट विवर्तनिक प्रक्रियाएं भूपटलीय प्लेटों के

अर्द्धतरल अवस्था वाले दुर्बलतामंडल के ऊपर खिसकने से ही उत्पन्न होती हैं।

**ध्रुवीय ज्योति (तथा विकिरण पट्टियां)** : सूर्य से “सौर वात” कहलाने वाले उच्च गतिशील कणों की धारा (प्लाज्मा) का निरंतर उत्सर्जन होता रहता है। पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र द्वारा प्लाज्मा की यह धारा उससे हजारों किलोमीटर दूर विक्षेपित कर दी जाती है। इस तरह सौर वात के कणों की सीधी टक्कर से बचाव प्रदान करने वाले एक प्रतिरक्षक गोले से पृथ्वी धिरी होती है जिसे पृथ्वी का चुंबकीयमंडल (मैग्नेटोस्पियर) कहते हैं। अलबत्ता, चुंबकीय बल रेखाओं के जरिए ये आवेशित कण ध्रुवीय क्षेत्रों तक जा पहुंचते हैं, जहां ये वायुमंडलीय अणुओं एवं परमाणुओं को विकिरण उत्सर्जन के लिए प्रेरित करते हैं। इस दृश्य विकिरण को ध्रुवीय ज्योति का नाम दिया जाता है। पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र सौर वात के कणों को पृथ्वी से कुछ हजारों किलोमीटर ऊपर स्थित “वॉन ऐलन रेडिएशन बेल्ट्स” कहलाने वाले दो पट्टी-सदृश क्षेत्रों में कैद कर लेता है। शुक्र का कोई सार्थक चुंबकीय क्षेत्र नहीं होता; अतः इसका कोई चुंबकीयमंडल नहीं होता और न इसकी कोई विकिरण-पट्टियां ही होती हैं।

**नाक्षत्र काल (घूर्णन)** : किसी ग्रह का नाक्षत्र घूर्णन काल तारों की पृष्ठभूमि के सापेक्ष इसकी अक्षीय घूर्णन दर है और इसके वास्तविक घूर्णन का मापक है। सूर्य के सापेक्ष इसका घूर्णन (और इसलिए दिन+रात की अवधि) अक्षीय गति के योगदान के कारण सामान्यतया भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, पृथ्वी की नाक्षत्र घूर्णन दर 2.3 घंटे 5.6 मिनट लेकिन दिन+रात (आम दिन या सिविल डे) की अवधि 24 घंटे होती है। शुक्र के लिए नाक्षत्र घूर्णन 24.3 दिन है, और यह पश्चगतिक होती है; इसका “आम” (सिविल) दिन लगभग 11.7 दिन होता है।

**पश्चगतिक (घूर्णन/परिक्रमण)** : अगर कोई अंतरिक्ष में ग्रहों के कक्षीय परिक्रमणों के औसत तल के उत्तर में स्थित हो तो ग्रह उसे सूर्य के चारों ओर वामावर्त दिशा में घूमते हुए दिखाई देंगे। इस तरह की गति को “अग्रगतिक परिक्रमण” (प्रोगेड रेवोल्युशन) कहते हैं तथा दूसरी यानी “दक्षिणावर्त” दिशा में घूमता हुआ कोई पिंड पश्चगतिक परिक्रमण करता हुआ कहा जाता है। सौर जगत में केवल कुछ धूमकेतु तथा बड़े ग्रहों के लघु उपग्रह ही पश्चगतिक परिक्रमण कहते हैं।

जैसा कि ऊपर हम देख चुके हैं, अधिकांश ग्रह अपने अक्ष पर वामावर्त दिशा में ही घूर्णन करते हुए दिखाई देते हैं, जिसे “अग्रगतिक घूर्णन” कहते हैं। केवल शुक्र ही इसका अपवाद है क्योंकि यह अत्यंत धीमा पश्चगतिक (यानी उत्तर से देखने पर दक्षिणावर्त दिशा में) घूर्णन करता है।

**प्रसर कोण (इलांगेशन)** : पृथ्वी से देखने पर किसी खगोलीय पिंड द्वारा सूर्य पर बनने वाला आभासी कोण। अंतर्ग्रहों के लिए एक ऊपरी सीमा (अपर लिमिट) होती है जो उस ग्रह विशेष की सूर्य से दूरी पर निर्भर करती है। शुक्र के लिए यह कोण लगभग 4.6 अंश और बुध के लिए 2.8 अंश होता है। अतः ये दोनों ग्रह सूर्यास्त के बाद केवल पश्चिमी आकाश या फिर भूरे के समय पूर्वी आकाश में ही दृष्टिगोचर होते हैं। **पात (नोड्स)** : ग्रहीय कक्षाएं (तथा चंद्रमा की कक्षा भी) क्रांतिवृत्त के साथ एक लघु कोण का निर्माण करती हैं, अतः वे इस तल को दो विकर्णतः सम्मुख बिंदुओं पर काटती हैं। इन्हें कक्षा के पातों की संज्ञा दी जाती है। वह बिंदु जहां अपनी कक्षा में घूमता ग्रह क्रांतिवृत्तीय तल को दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर काटता है “आरोही

पात” तथा दूसरा बिंदु “अवरोही पात” कहलाता है। वर्ष में दो बार (जिनके बीच छह महीनों का फासला होता है) पृथ्वी अपनी कक्षा में ऐसी स्थिति में होती है कि सूर्य किसी ग्रह विशेष के पात की दिशा में दिखाई देता है। अगर वह ग्रह कोई अंतर्ग्रह है और एक ही समय में वह अंतर्युति की स्थिति को पहुंचता है तो वह सौर चकती का पारगमन करता हुआ दृष्टिगोचर होगा। ग्रहणों के लिए भी कुछ ऐसा ही कथन सत्य है। चंद्रमा की कक्षा के दो पातों को हमारे देश में क्रमशः “राहु” तथा “केतु” की संज्ञा दी जाती है।

**पारगमन :** किसी बड़े पिंड का चककर काटता हुआ कोई लघु खगोलीय पिंड पृथ्वी से परिलक्षित किए जाने पर उसकी दृष्टि-रेखा (लाइन ऑफ साइट) में आकर कछ अवसरों पर उसे बाधित कर सकता है। ऐसी घटनाओं को “पारगमन” का नाम दिया जाता है। जैसे बृहस्पति के बड़े चंद्रमा कुछ अवसरों पर उसकी चकती का पारगमन करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उसी तरह शुक्र और बुध ग्रह, जिनकी कक्षाएं पृथ्वी की कक्षा की तुलना में छोटी होती हैं, कमी-कभार सौर चकती का पारगमन करते हुए प्रतीत होते हैं। तकनीकी दृष्टि से सूर्य ग्रहण को सूर्य के आगे से गुजरते चंद्रमा का “पारगमन” माना जा सकता है (लेकिन चंद्र ग्रहण को नहीं)। चंद्रमा से परिलक्षित करने पर यह असल में पृथ्वी का ही पारगमन है। लेकिन विरल रूप से होने वाली घटनाएं जैसे किसी ग्रह (या चंद्रमा) का किसी तारे के आगे से गुजरने को “उपगूहन” (अकल्टेशन) की घटना कहा जाता है।

इस तथ्य पर भी गौर करें कि “याम्योत्तर गमन” का भिन्न अर्थ होता है। खगोल (सेलेस्टियल स्पियर) पर सिर के ऊपर शिरोबिंदु (जेनिथ पाइंट) से होकर गुजरते हुए उत्तर-दक्षिण वृत्त को “याम्योत्तरीय वृत्त” कहा जाता है, तथा किसी खगोलीय बिंदु के पूर्व से पश्चिम दिशा में इस वृत्त से होकर प्रतिदिन गुजरने की घटना को “याम्योत्तर गमन” कहते हैं।

**युतियां :** जिस तरह पृथ्वी पर स्थानों की पहचान उनके भौगोलिक अक्षांशों तथा देशांतरों द्वारा की जाती है, उसी तरह खगोलीय पिंडों पर भी खगोल पर मिलते-जुलते निर्देशांक आरोपित किए जाते हैं। पर खगोलीय पिंडों के मामले में दो वैकल्पिक प्रणालियां काम में लाई जाती हैं। साधारणतया तारों की पहचान उनके “विसुवांश” (राइट असेंशन) तथा “क्रांतियों” (डिक्लिनेशनस), जिनके निर्धारण में खगोलीय विषुव वृत्त को संदर्भ वृत्त के रूप में लिया जाता है, द्वारा की जाती है जबकि सौर जगत के ग्रह आदि पिंडों की स्थिति को अमूमन उनके खगोलीय अक्षांशों तथा देशांतरों, जिनमें क्रांतिवृत्त को संदर्भ रूप (इस वृत्त में स्थिति को दर्शाने वाला निर्देशांक “देशांतर” होता है) में लिया जाता है, द्वारा ही निर्देशित किया जाता है। जब दो खगोलीय पिंडों का एक ही देशांतर होता है तो उनकी आपस में “युति” मानी जाती है (लेकिन उनके अक्षांशों में संभावित अंतर के कारण उनकी स्थितियों का एक होना आवश्यक नहीं है)। अंतर्ग्रहों की सूर्य के साथ दो भिन्न किस्म की युतियां होती हैं। अंतर्युति के दौरान ग्रह पृथ्वी और सूर्य के बीच में स्थित होता है; जबकि सूर्य जब ग्रह और पृथ्वी के बीच में होता है तब बाह्य युति होती है अंतर्युति के दौरान अगर सूर्य और ग्रह दोनों का एक ही खगोलीय अक्षांश हो तो ग्रह तब सौर चकती का “पारगमन” करेगा। बाह्य युति के दौरान भी इससे मिलती-जुलती स्थिति ही पेश आएगी जब सूर्य

ग्रह को ढक लेगा (लेकिन स्पष्ट है कि इस घटना का आसानी से अवलोकन नहीं किया जा सकता)।

बाह्य ग्रहों में केवल “बाह्य” युति ही होती है। दूसरी स्थिति “वियुति” की होती है, जब सूर्य से ग्रह का अक्षांश अंतर 180 अंश होता है; हाँ, उस समय उस ग्रह का कोई काल्पनिक प्राणी पृथकी को सूर्य के साथ “अंतर्युति” की स्थिति में ही देखेगा।

**विवर्तनिकी (टेक्टोनिक्स)** : आंतरिक प्रक्रियाओं (जैसे ज्वालामुखी सक्रियता, क्षेप आदि) जिनके द्वारा किसी ग्रहीय सतह का पुनर्निर्माण होता है। प्लेट विवर्तनिकी एक विशिष्ट प्रकार है जिसमें ऊपरी पटल विभिन्न प्लेटों के रूप में खंडित होते हैं जो फिर नीचे के अद्वृतरल “एस्थिनोस्पियर” क्षेत्र के ऊपर सवार होकर यहाँ-वहाँ खिसकते हैं। पृथकी पर प्लेट विवर्तनिक प्रक्रियाएं क्रियाशील होती हैं जो महाद्वीपीय विस्थापन का कारण बनती हैं। करीब 20 करोड़ वर्ष पूर्व पृथकी का समस्त भूखंड (पैनगिया नामक) एक महाद्वीप का सृजन कर रहा था जो फिर खंडित हो गया तथा भिन्न प्लेटों ने फिर खिसते हुए वर्तमान महाद्वीपीय स्वरूपों की रचना की। शुक्र पर प्लेट विवर्तनिकी संबंधी कोई भी साक्ष्य नहीं मिले हैं; बहरहाल ज्वालामुखी प्रक्रिया वहाँ क्रियाशील रही है।

**रिवति (लिवडी)** : किसी ग्रहीय सतह की विसरित परावर्तकता। किसी ग्रह की आभासी द्युति उसकी (1) सूर्य से दूरी, (2) पृथकी से दूरी तथा (3) पृष्ठ शिवति पर आश्रित होती है। बादलों से धिरा हाने के कारण शुक्र की रिवति का मान चंद्रमा सदृश सतहों (करीब 16 प्रतिशत) की तुलना में 70 प्रतिशत से भी अधिक होता है और इसलिए यह इतना चमकदार दिखाई देता है।

**संपर्क** : पारगमनों के दौरान चार “काल मापन” महत्वपूर्ण हैं। पहला वह समय है जब ग्रह की चकती सूर्य के किनारे को स्पर्श भर करती है। यह पहला संपर्क है यानी पारगमन की शुरुआत। अगला समय दूसरे संपर्क के दौरान आता है जब ग्रह की चकती सौर चकती में पूर्ण रूप से निमीलित हो जाती है। इसी तरह ग्रह के निर्गमन के समय “तीसरा” तथा “चौथा” संपर्क घटित होते हैं।

**संयुति काल (साइनोडिक पीरियड)** : वह कालावधि जिसमें कोई ग्रह विशेष सूर्य के सापेक्ष एक ही सी स्थिति में पहुचता है, उस ग्रह का संयुति काल कहलाता है। दो क्रमागत अंतर्युतियों (या बाह्य युतियों) के बीच की अवधि ही संयुति काल होती है।

**सिंथेटिक अपरचर रेडियो मैरिंग** : एक उच्च प्रतिबिंब विभेदन रेडियो मैरिंग तकनीक जिसमें उच्च विभेदन रेडियो प्रतिबिंबन हासिल करने के लिए भिन्न रेडियो दूरबीनों द्वारा प्राप्त संकेतों का व्यतिकरणमितीय रूप से संयोजन किया जाता है। चरम उदाहरण के रूप में, सैकड़ों किलोमीटर की दूरी पर स्थित रेडियो दूरबीनों (के संकेतों) का, अति उच्च विभेदन प्राप्त करने के उद्देश्य से, संयोजन किया जा सकता है जो रेडियो तरंगों को परावर्तित या उत्सर्जित करते किसी पिंड की स्थिति की “सटीक” रूप से पहचान करा सकता है।

## अधिक जानकारी के लिए संस्तुत पुस्तकें

1. अलेक्सांद्र टी. खेजिलेवस्की, “द स्लेनेट नेक्स्ट डोर”, स्काई एंड टेलिस्कोप, पृष्ठ 360-368, अप्रैल 1989.
2. जे. केली बिएटी, “वर्किंग मैगलेंस मैजिक”, स्काई एंड टेलिस्कोप, पृष्ठ 16-21, अगस्त 1993.
3. ऐलन आर. स्टोफान, “द न्यू फेस ऑफ वीनस”, स्काई एंड टेलिस्कोप, पृष्ठ 22-31, अगस्त 1993.
4. जेनेट जी. लुहमान, जेम्स बी. पोलाक और लारेस कॉलिन, “द पाओनियर मिशन टू वीनस”, साइंटिफिक अमेरिकन, पृष्ठ 68-75, अप्रैल 1994.
5. जे. कारगेल, “द रिवर्स ऑन वीनस”, स्काई एंड टेलिस्कोप, अगस्त 1997.

शुक्र को छोड़े गए अंतरिक्ष यानों तथा उनके द्वारा प्राप्त किए गए परिणामों के बारे में संक्षिप्त विवरण कौम्हिज यूनीवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित “द एस्ट्रोनॉमी एस्ट्रोफिजिक्स एनसाइक्लोपीडिया” से प्राप्त किया जा सकता है।

\* \* \*